बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में
पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

2008

शोध निर्देशक
डॉ0 डी0आर0 सिंह पाल
एम0ए0,एम0एड0, पी-एच0डी0
निदेशक एवं अध्यक्ष
शिक्षा संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ0प्र0)

शोधकर्ता
राजेश सिंह
एम0ए0,एम0एड0

शोध-केन्द्र

पं0 जवाहर लाल नेहरू पी0जी0 कालेज, बाँदा (उ0प्र0)
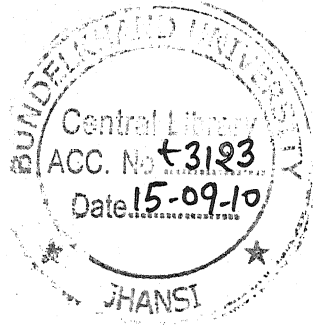
<u>घोषणा पत्र</u>

मैं, **राजेश सिंह** यह घोषणा करता हूँ कि **"बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता"** शीर्षक के अन्तर्गत मेरे द्वारा किया गया यह शोधकार्य **डॉ0 डी0आर0 सिंह पाल** निदेशक एवं अध्यक्ष शिक्षा संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0) के मार्गदर्शन में किया गया है। मेरी पूर्ण जानकारी के अनुसार शोधकार्य का कोई दृष्टान्त ऐसा नहीं है, जो बिना उचित सन्दर्भ के प्रस्तुत किया गया हो।

मेरा यह शोध कार्य मेरे संज्ञान में पूर्णतः मौलिक है, जिसे मैंने अपने मार्गदर्शक के सतत् सम्पर्क में रहकर 200 दिनों से अधिक की उपस्थिति देकर उनके कुशल मार्गदर्शन में पूर्ण किया है।

शोधार्थी

राजेश सिंह

एम0ए0, एम0एड0

स्थान : बाँदा/झाँसी

दिनाँक : 10.10.09
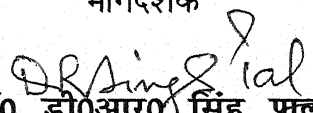
<u>प्रमाण पत्र</u>

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री राजेश सिंह** द्वारा **"बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता"** विषय पर शोधकार्य मेरे मार्गदर्शन एवं निर्देशन में पूर्ण किया गया है। यह शोध कार्य शोधार्थी का मौलिक कार्य है, जो शोध उपाधि के लिए पूर्ण होकर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की शोध उपाधि से सम्बन्धित सभी अध्यादेशों की पूर्ति करता है तथा विषयवस्तु एवं भाषा दोनों की दृष्टि से परीक्षकों को प्रस्तुत करने के स्तर का है।

शोधार्थी अपने शोधकार्य की पूर्णता के लिए निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहा है तथा मार्गदर्शन हेतु मेरे पास 200 दिनों से अधिक की उपस्थिति दर्ज करायी है। मैं इनके शोध कार्य से पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ तथा शोध उपाधि हेतु अनुशंसित करता हूँ।

मार्गदर्शक

DRSingh Pal

डॉ0 डी0आर0 सिंह ~~पाल~~
एम0ए0,एम0एड0,पी-एच0डी0
निदेशक एवं अध्यक्ष
शिक्षा संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,
झाँसी (उ0प्र0)

स्थान : झाँसी
दिनाँक : 10.10.2009

आभार प्रदर्शन

शिक्षा विकास का वह क्रम है जिनके द्वारा मनुष्य स्वयं को विभिन्न रूपों में आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। हमें शिक्षा द्वारा ही कभी असफल न होने वाली सूझ मिलती है। यह हमें मोक्ष की ओर ले जाती है एवं सांसारिक जीवन में हमें सब ओर प्रगति एवं सम्पन्नता प्रदान करती है। शिक्षा भ्रम का निवारण करती है, हमारी कठिनाइयों को दूर करती है और जीवन के यथार्थ मूल्यों को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करती है। एक व्यक्ति जिसके पास शिक्षा का प्रकाश नहीं, वह नेत्र होते हुए भी अन्धे के समान है। शिक्षा रूपी प्रकाश फैलाने में शिक्षक का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है।

शिक्षक ही विद्यार्थी को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है, इसलिए शिक्षक सर्वाधिक पूज्य एवं आदरणीय होता है।

गुरूः ब्रह्मा गुरूः विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा एवं पूजनीय माता-पिता एवं श्रद्धेय गुरूजनों की कृपादृष्टि के परिणामस्वरूप ही मेरी रूचि सदैव शिक्षा के क्षेत्र में बनी रही। इसी लगन एवं परिश्रम का परिणाम है, पी-एच0डी0 की उपाधि हेतु यह शोध ग्रन्थ।

यह शोधकार्य मात्र मेरा अपना प्रयास मात्र नहीं है वरन् श्रद्धेय विद्वत्जनों एवं कालेज के अध्यापकों के सहयोग का परिणाम है। मै उन सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मुझे इस कार्य में सहयोग प्रदान किया है एवं अपनी वात्सल्यपूर्ण वाणी से सदैव मुझे प्रोत्साहित कर मुझे इस कार्य को बढ़ाने के लिए नई चेतना प्रदान की।

प्रस्तुत शोधकार्य के विषय चयन और लेखन में मै सुयोग्य विद्वान डॉ0 डी0आर0सिंह पाल का आजन्म ऋणी रहूंगा, जिन्होंने प्रारम्भ से अन्त तक इस कार्य को पूर्ण करने में अपना अमूल्य समय एवं सहयोग देकर मेरा पथ प्रदर्शन किया।

मैं इस महाविद्यालय के पुस्तकालय परिवार का भी आभारी हूं, जिन्होंने मुझे विभिन्न पुस्तकें ससमय प्रदान कर मेरा यह शोधकार्य पूर्ण करने में सहायता प्रदान की, साथ ही साथ मैं राजकीय पुस्तकालय, बाँदा, नागरी प्रचारक पुस्तकालय बाँदा एवं राजकीय पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद, भारती भवन पुस्तकालय, मुठ्ठीगंज, इलाहाबाद का अत्यन्त आभारी हूँ जिनसे अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तकें समय-समय पर प्राप्त होने पर मैं यह दुष्कर कार्य को सुगम बनाने में सफल हुआ।

मैं अपने सहयोगियों तथा मित्रों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने निराशा के क्षणों में मेरा उत्साहवर्धन किया तथा मैं अपने मित्र श्री देवेन्द्र कुमार आर्य, सहायक विकास अधिकारी तथा राजबहादुर सिंह एवं राजकुमार सिंह

(एम0ए0, बी0एड0), अशोक कुमार एवं नीरज श्रीवास्तव जी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके सुझावों तथा सक्रिय सहयोग ने इस शोध कार्य को उचित दिशा दी तथा इस दुष्कर कार्य को सरल बना दिया। साथ ही मैं अपने मित्र सुनील मिश्र (शुभम कम्प्यूटर्स) के प्रति भी आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य को ससमय कम्प्यूटरीकृत किया।

अन्त में मैं अपनी पूजनीया माता श्रीमती शिवकली एवं श्रद्धेय पिता श्री रामशरण सिंह एवं परिवार के समस्त सदस्यों विशेषकर मेरे अग्रज श्री महेन्द्र सिंह एवं भाभी श्रीमती सुभद्रा सिंह के प्रति आजीवन ऋणी रहूंगा जिन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी एवं वात्सल्य से निरन्तर प्रोत्साहित किया तथा ससमय आर्थिक सहायता प्रदान की तथा मैं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती पूनम सिंह का भी विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पारिवारिक दायित्वों से प्रायः मुक्त करके पर्याप्त समय एवं शान्तिपूर्ण वातावरण प्रदान करते हुए इस शोधकार्य को पूर्ण करने हेतु सदैव प्रेरणा दी।

प्रस्तुत अनुसंधान शिक्षा के किसी भी पक्ष की सम्पुष्टि कर सका तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

राजेश सिंह
(शोधार्थी)
एम0ए0, एम0एड0

विषय सूची

****

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

समस्या और उसकी पृष्ठभूमि

"बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता पूर्णतः बौद्धकालीन शिक्षा दर्शन एवं व्यवस्था पर आधारित है, बौद्ध शिक्षा दर्शन एक ओर करोड़ों लोगों में शिक्षा के माध्यम से प्राण फूंकने में समर्थ है तो दूसरी ओर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने में समर्थ है। उक्त समस्या की पृष्ठभूमि में बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थों का विस्तार से विवेचन किया गया है तथा बौद्ध-शिक्षा-दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता पर भी विचार किया गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन गरीब बालकों को कोई दूसरा अवसर नहीं प्रदान करती जो इसके संकीर्ण प्रवेश द्वारा में प्रवेश से वंचित रह जाते हैं या जो सामाजिक या आर्थिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर इससे बाहर निकल जाते हैं, वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहित स्वार्थों की सहायता करने को प्रोत्साहित करती है, यथ स्थितिवाद को प्रोत्साहन देती है तथा शैक्षिक समानता के अवसरों का गला घोंटती है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषयुक्त तथा असमानताओं को बढ़ावा देने वाली है। कह सकते हैं कि तार्किक चिन्तन एवं अभिवृत्तियों में विकास के साथ-साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हुई है, इसे बौद्धिक क्रान्ति कहा जा सकता है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी की प्रगति ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली को

भी चुनौती बना दिया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जो शिक्षा प्रदान की जा रही है वह शिक्षा अगले दस वर्षो में पिछड़ी मानी जाने लगती है। वर्तमान शिक्षा औपचारिकता के बन्धन में जकड़ी है कि वह पूर्णतः निष्क्रिय होकर मूल उद्देश्य से भटकती जा रही है, वस्तुतः वर्तमान शिक्षा उपाधिधारक बनती जा रही है न कि ज्ञानवर्धक। इसी कारण शिक्षित बेरोजगारी में तीव्र वृद्धि हो रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से अलगाव का वातावरण निर्माण कर रही है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने देश में अनेक भेद एवं विषमताओं को जन्म दिया है अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली में देश की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नहीं है, अतएव एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो देश या समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान कर सके तथा समाज में विलुप्त नैतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना कर सके। यह कार्य बौद्धकाल में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था को अंगीकृत कर किया जा सकता है, बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानता का वातावरण था, ऊँच नीच का भेदभाव नहीं था, न ही धनी-निर्धन का भाव। शिक्षा मुक्त हस्त से आचार्यो द्वारा सुयोग्य पात्र को प्रदान की जाती थी, गुरू-शिष्य सम्बन्ध परस्पर सामंजस्यपूर्ण मधुर थे। शिष्य गुरू को यथोचित सम्मान प्रदान करता है। गुरूकुलों में पूर्णतः अनुशासनबद्ध शिक्षा प्रदान की जाती थी, मौखिक तथा लिखित परीक्षणों द्वारा

ज्ञान की पुष्टि की जाती थी, स्त्री शिक्षा तथा शूद्र शिक्षा समान रूप से दी जाती थी, समाज में स्नातक का सम्माननीय स्थान था। समाज में एकता का पाठ बौद्ध शिक्षा केन्द्र भली-भांति सफलतापूर्वक पढ़ा रहे थे। अनुसंधानें पर पर्याप्त समय दिया जाता था, नवीनतम अनुसंधानों को प्रेरित किया जाता था। अतएव बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति या विस्तार के अध्ययन द्वारा बौद्ध शिक्षा प्रणाली का अध्ययन कर प्राप्त निष्कर्षों को वर्तमान शिक्षा में प्रयोग कर वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार तथा समुन्नत किया जा सकता है।

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली अंग्रेजी शासन की देन है। इसी कारण यह शिक्षा प्रणाली अपने विशिष्ट, कृत्रिम संरचित वातातरण के फलस्वरूप स्वाभाविक भारतीय सामाजिक वातावरण के साथ समुचित सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती, अतः शिक्षा वास्तविक जीवन से दूर, व्यावहारिकता से बहुत दूर, औपचारिकता के शिकंजों से जकड़ी होने के कारण अपना वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य खो बैठी है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक भी कोरे ज्ञान की गठरी लिए अव्यावहारिकता एवं अकर्मण्यता का प्रतिपादन करते फिरते हैं। और हाल यह है कि विद्यार्थी उनका अनुसरण करते हुए निरूद्देश्य नौकरियों की प्राप्ति हेतु व्यग्र रहते हैं। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षित बेरोजगारी, सामाजिक असंतुलन को जन्म देती है, यह एक बन्द वृत्त के समान है जिसके अनुसार अध्ययन करने पर जीवन में ठहराव सा आ जाता है वस्तुतः वर्तमान शिक्षा इस विश्वास पर आधारित है कि शिक्षा जीवन की तैयारी के लिए है। वस्तुतः इसके विपरीत यह होना चाहिए कि शिक्षा जीवन अनुभव के साथ चलने वाली प्रक्रिया है। जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षित भारतीय सामाजिक प्रणाली में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। यह एक ऐसी बन्द प्रणाली है जिसके कार्यकाल का

विस्तार उसमें प्रवेश तथा उसका समापन नियमों से जकड़ा हुआ है, उसमें लचीलापन का अभाव है। यह केवल प्रमाण पत्र एवं उपाधियाँ वितरित करने का यंत्र मात्र है। यह केवल 'मैट्रीकुलेटों' एवं 'गेजुएटों' की संख्या में वृद्धि करती है किन्तु मानव मन मे ज्ञान की पिपासा जाग्रत कर वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की उन्नति में सहायक नहीं बन पाती है। वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता एवं शिष्टाचार का अंधानुकरण तीव्रगत से हो रहा है। कामुक भावों का प्रदर्शन, जन्म दिवस पर केक काटना तथा दीप बुझाना, विवाहोत्सव आदि में पाश्चात्य ढंग से नृत्य करना आदि रीतियां बढ़ रही हैं। भारतीय समाज में यह प्रवृत्तियां नैतिक दृष्टि से पतन मानी जाती हैं। वर्तमान शिक्षा भी इन भौतिकवादी प्रवृत्तियों का शिकार हो चुकी है। भौतिकवादी युग की शिक्षा का भौतिक होना स्वाभाविक है। वर्तमान शैक्षिक वातवरण भौतिकता में इतना अधिक दूषित हो गया है कि शिक्षक, शिक्षार्थी का लक्ष्य परीक्षा में सफलता प्राप्त करना या करवाना हो गया है। अच्छी श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण होकर प्रमाण पत्र प्राप्त हो जाने मात्र से व्यक्ति की योग्यता प्रमाणित हो जाती है, चाहे वह प्रमाण पत्र अनुचित माध्यमों से क्यों न प्राप्त हुआ है। अनुशासनहीनता, नकल की प्रवृत्ति, अभद्र व्यवहार तथा अस्वस्थ नेतागिरी का नग्न प्रदर्शन शिक्षण संस्थाओं में दृष्टिगोचर हो रहा है। शिक्षा संस्थाओं में

अध्ययन-अध्यापन का वातवरण मृतप्राय है। शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच सम्बंधों में पवित्रता का अभाव होता जा रहा है। गुरू को सर्वाधिक महत्व देने की बात इतिहास एवं कथा-कहानियों का विषय होती जा रही है। प्राचीन कालीन शिक्षा में गुरू-शिष्य के मध्य पिता-पुत्र का सम्बन्ध है, गुरू को माता-पिता, सखा तथा ईश्वर से सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता था, आज अपने संकीर्ण स्वार्थो की पूर्ति हेतु न तो शिष्य अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है, न ही गुरू अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति कर रहा है। नैतिक मूल्यों में दिनोंदिन ह्रास हो रहा है।

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति, शिक्षा और शिक्षा के प्रचार-प्रसार को सर्वोच्च श्रद्धा एवं प्रतिबद्धता का स्थान दिया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की अविछिन्न धारा जो आज भी भारत को भारत बनाए हुए है, सतत शिक्षा के अवसरों को सदैव प्रदान करती रही है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा कुछ विशेष वर्गों तक सीमित रही है, परन्तु यह भी सत्य है कि भारत तथा अन्य प्राच्य देशों के चमकते हुए दार्शनिक, कवि, वैज्ञानिक, सन्त तथा महात्मा आदि सतत् शिक्षा की ही देन थे और आजीवन सतत शिक्षा के प्रचारक की भूमिका का निर्वहन करते थे। बौद्ध दर्शन में आजीवन चलने वाली सतत् शिक्षा की झलक उनके धार्मिक ग्रन्थों एवं साहित्यक वांड.मयों में

बहुत स्पष्ट है। जातक ग्रन्थों में सतत् शिक्षा की व्यवस्था थी। बौद्ध दर्शन की सतत् शिक्षा का अध्ययन वर्तमान सतत् शिक्षा के सम्प्रत्यय को संरचित एवं सुगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है, किन्तु आश्चर्य की बात है कि जनता के धन को जिस शैक्षिक प्रक्रिया में प्रचुर मात्रा में व्यय किया जा रहा है वह शिक्षा निश्चित रूप से ऐतिहासिक एवं दार्शनिक धरातल पर नहीं खड़ी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाश्चात्य शिक्षा दर्शन से सम्बन्धित सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, वहीं दूसरी ओर भारतीय शिक्षा दर्शन की ओर अनुसंधानकर्ताओं ने विशेष ध्यान नहीं दिया यद्यपि वर्तमान तथा पूर्व दशकों में इस दिशा में शोध कार्य आरम्भ तथा सम्पन्न हुए हैं। अरविन्द, राधाकृष्णन, विवेकानन्द, गांधी, टैगोर आदि दार्शनिकों के जीवन तथा शैक्षिक दर्शन का अध्ययन एवं विश्लेषण अनेक शोध ग्रन्थों में मिलता है, इस दृष्टि से भी प्रस्तुत भिन्न है। अनेक अनुसंधानकर्ता प्रायः यह भ्रान्ति धारण किये रहते हैं कि भारतीय शिक्षा दर्शन प्राचीन शिक्षा प्रणाली में परिलक्षित होता है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन एवं प्राचीन शिक्षा प्रणाली दोनो ही पृथक एवं स्वतंत्र विषय हैं, इस दिशा में अनुसंधानों में अपर्याप्त कार्य ही इस भ्रान्त धारणा का प्रमुख कारण है। अतएव प्राचीन ग्रंथों में भारतीय शिक्षा दर्शन

सम्बन्धी तथ्यों के वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध विवेचना तथा शोधकार्यों की महती आवश्यकता है। उपनिषद, महाभारत, पुराण, रामायण, जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित कुछ असम्बद्ध बातों को आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, यथार्थवाद, प्रयोजनवाद के अन्तर्गत रखकर विवेचन किया जाता है इस प्रकार बिखरी हुई सामग्री को बिना किसी उचित दृष्टि में देखे, किसी सम्प्रदाय विशेष के अन्तर्गत रखना शैक्षिक एवं तार्किक दृष्टि से अनुचित है। भारतीय शिक्षा दर्शन से सम्बन्धित सामग्री महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इन पर क्रमबद्ध विश्लेषणात्मक अनुसंधानों की आवश्यकता है।

बौद्ध दर्शन एवं शिक्षा एवं इतिहास का ज्ञान अनुसंधानकर्ताओं एवं अध्येताओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, कहते हैं कि किसी भी राष्ट्र का आईना उसकी शिक्षण संस्थाओं में ही प्रतिबिम्बित होता है। प्राचीन भारत में सांस्कृतिक एवं समाज में राष्ट्रीय परम्पराओं के निर्वहन एवं तदनुकूल आचरण के लिए प्रोत्साति करने के प्रधान केन्द्र शिक्षा केन्द्रों को ही माना जाता था। सर्वप्रथम बौद्ध काल में बौद्ध बिहारों के क्रमिक तथा समुन्नत विकास के फलस्वरूप वर्तमान विद्यालयों का जन्म हुआ था, बौद्ध कालीन शिक्षा केन्द्र वर्तमान शिक्षा केन्द्रों के आधार माने जाते हैं। भारतीय बौद्ध शिक्षा प्रणाली अत्यन्त प्राचीन है परन्तु गौरवमयी है जिस कारण आज भी आधुनिक शिक्षा

व्यवस्था में अप्रत्यक्ष रूप से यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। अतएव आधुनिक भारत की शिक्षा प्रणाली में व्याप्त अव्यवस्थाओं एवं दोषों की समाप्ति हेतु यह परमावश्यक है कि प्राचीन भारतीय बौद्ध शिक्षा दर्शन का सर्वांगीण अध्ययन किया जाए। वर्तमान शिक्षा को धर्म, संस्कृति दर्शन , नैतिक मल्यों, जीवन मूल्यों तथा आध्यात्मिक आदर्शो से युक्त करना होगा और इसकी निरन्तरता को स्थापित करना होगा। बौद्ध शिक्षा दर्शन विस्तार एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता ही का अनुमान करना ही वर्तमान अनुसंधान का उद्देश्य है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार एवं सर्वांगीण विकास हेतु प्रस्तुत शोध कार्य की महत्ता एवं महती आवश्यकता स्पष्ट है।

शोध समस्या का औचित्य

बौद्ध शिक्षा दर्शन मानव जाति के कल्याण के लिए मानव मूल्यों को जाग्रत करने में तथा मानव मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम हैं। भारतीय जीवन दर्शन का मूलाधार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है। बौद्ध दर्शन भी इन चारों में अद्भुत समन्वय स्थापित करता है, धर्म तो जीवन का विशिष्ट व्यवहारिक तत्व है। जो व्यक्त बिना किसी अहित एवं बिना किसी को कष्ट पहुंचाये जीवन व्यतीत करता है वही सच्चे अर्थो में धर्म का पालन करता है उसी को धार्मिक कहा जाता है। बौद्ध धर्म दर्शन के अन्तर्गत धर्म को नैतिक आचारपरक संहिता के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। अर्थ तथा काम को बौद्ध दर्शन मर्यादाओं के भीतर स्वीकार करता है। इस कारण बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को महत्व दिया गया। मोक्ष तो बौद्ध दर्शन का परम लक्ष्य माना गया है। भगवान ने मोक्ष के मार्ग की खोज हेतु अपना जीवन व्यतीत कर दिया, बुद्ध का मोक्ष मार्ग समस्त मानव के लिए था।

बुद्ध, संघ, धर्म बौद्ध शिक्षा के तीन अंग थे। बुद्ध का तात्पर्य है आचार्य तथा ज्ञानी। बालक की शिक्षा में शिक्षक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। सच्चा ज्ञान आचार्य के बिना संभव नहीं है। तथा ज्ञान की प्राप्ति हेतु संघ का होना परमावश्यक है, तत्कालीन संघ का तात्पर्य शिक्षा केन्द्र से माना

जाता है। शिक्षा प्रप्ति हेतु संघ में प्रवेश लेना परमावश्यक था। बौद्ध शिक्षा संघों में सुयोग्य विद्वान एवं आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती है। 'धर्म' बौद्ध शिक्षा का तृतीय महत्वपूर्ण उद्देश्य तथा अंग था। धर्म की शिक्षा द्वारा ही सच्चे तथा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के शिष्य, गुरू तथा शिक्षा केन्द्र, पाठ्यक्रम आदि के महत्व को तो स्वीकार किया गया परन्तु धर्म का प्रवेश स्वीकार नहीं किया गया है। धर्म से ही नैतिकता का प्रादुर्भाव सम्भव है। धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम में स्थान न होने तथा धार्मिक शिक्षा को महत्व न दिये जाने अपितु उपेक्षा किए जाने से आधुनिक छात्र, अध्यापक तथा समाज नैतिक चरित्र का पतन हो रहा है। बालक की लौकिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति हेतु पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा को सम्मिलित करना परमावश्यक है तभी समाज में आध्यात्मिक चेतना का जागरण हो सकेगा, अतएव आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिकता की पुर्नस्थापना में बौद्ध शिक्षा प्रणाली का प्रयोग करना इस दिशा में सार्थक प्रयास हो सकता है। आधुनिक भारत की शिक्षा प्रणाली का प्रमुख आधार समानता तथा सर्वधर्म समभाव है। तथा विद्वानों द्वारा आधुनिक भारतीय शिक्षा में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु जिन नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रयास किए जा रहे हैं वे भारतीय जीवनादर्शों एवं जीवन मूल्यों को अपनाने से ही संभव है क्योंकि प्राचीन भारतीय जीवन मूल्य नैतिकता का

विकास करते हैं, ये प्राचीन जीवनादर्श सांस्कृतिक, सभ्य, अनुशासनबद्ध एवं सदाचारी बनाते हैं। सामाजिक समानता तथा आर्थिक एवं राजनैतिक समानता, प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बिना समावेशन के संभव नहीं है। भारतीय जीवन मूल्यों के आधार पर ही आदर्श मानव जीवन का पूर्ण विकास संभव है। बौद्ध दर्शन की प्रेरणा से ही **'सर्वेभवन्तु सुखिनः'** की कल्पना साकार की जा सकती है। वस्तुतः अहिंसा, परोपकार, त्याग, सेवाभाव एवं तपस्या ऐसे भारतीय जीवन मूल्य हैं जो मानव को उसकी संकुचित विचारधारा को त्यागने तथा बंधुत्व की विशालता एवं प्रेम का अनुभव प्रदान करते हुए उसके जीवन को आदर्शमयी एवं सुख शांति से परिपूर्ण बनाते हैं। वस्तुतः मानव जाति का पवित्र उद्देश्य भी आध्यात्मिक शांति द्वारा ही प्राप्य है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जो शिक्षा व्यवस्था प्राप्त होती है वह बहुत कुछ अप्रत्यक्ष रूप से बौद्धधर्म एवं दर्शन से प्रभावित है। पाठ्यक्रम विस्तृत, उपयोगी तथा अलग-अलग थे। नालन्दा, तक्षशिला, बल्लभी, विक्रमशिला, काशी, ओदन्तपुरी में बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों की स्थापना थी जहां सुयोग्य विद्वानों तथा आचार्यो द्वारा हजारों की संख्या में विद्यार्थियों को पृथक-पृथक प्रकार की शिक्षा नियमबद्ध एवं अनुशासनिक वातावरण में प्रदान की जाती थी। इन शिक्षा केन्द्रों को विश्वविद्यालय की संज्ञा दी जाती है। इन विश्वविद्यालयों में सभी वर्णो के

तथा सुदूरवर्ती क्षेत्रों एवं देशों के विद्यार्थी अपनी ज्ञान पिपासा शान्त करने के लिए आते थे, विदेशी यात्रियों ने भी इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की थी। चीन, तिब्बत, मलाया, लंका, जावा, सुमात्रा आदि अनेक सुदूरवर्ती देशों से विद्यार्थी इन शिक्षा केन्द्रों में ज्ञान प्राप्त हेतु प्रवेश के लिए उत्सुक रहते थे। वर्तमान में विश्व के अन्य देशों द्वारा भारत को विश्वगुरू मानने का प्रमुख कारण इन्हीं प्राचीन शिक्षा केन्द्रों को माना जाता था, इन शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा विश्वव्यापी तथा सर्वोत्कृष्ट थी। भारतीय शिक्षा के सभी उच्चादर्श इनमें विद्यमान थे। यदि आज किसी लुप्त भारतीय ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद प्राप्त होता है या किसी महत्वपूर्ण पालि या संस्कृत ग्रन्थ की हस्तलिपि चीन, जापान, तिब्बत, या मध्य एशिया या दक्षिण पूर्व एशिया में प्राप्त होती है तो इसका श्रेय भी बौद्ध शिक्षा प्रणाली को दिया जाता है बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में विभिन्न देशों के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर ग्रन्थों की प्रतिलिपि स्वभाषा एवं स्वदेश में करते थे। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में प्रचलित शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा को भारत तथा विश्व के कई देशों में सर्वग्राह्य बना दिया था।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आधुनिक मनुष्य सामाजिक पशु बनता जा रहा है, वर्ग–भेद, वर्ण–भेद, क्षेत्रीयतावाद, तथा अन्य कई वादों ने मानवजाति एवं विश्व की शान्ति को खतरे में डाल दिया है। विश्व बन्धुत्व एवं सर्वधर्म समभाव की भावना मृतप्राय है, इस कारण समस्त विश्व के विवेकशील,

वैज्ञानिक, दार्शनिक, राजनयिक, शिक्षा शास्त्री तथा चिन्तक इस व्यवस्था में सुधार लाने के उपायों की खोज करने लगे हैं कि किस प्रकार विश्व में एक संस्कृति का उदय हो जिसमें मानव मात्र का कल्याण हो तथा विश्व शान्ति की स्थापना हो, बौद्ध शिक्षा दर्शन का परमोद्देश्य मानव मात्र का कल्याण, विश्वबंधुत्व की स्थापना तथा सर्वधर्म समभाव था। बौद्ध दर्शन का अन्य आधारभूत तत्व उसका कर्मवाद है। 'धर्म' आधारित कर्म ही जीवन का विकास करते हुए 'मोक्ष' की प्राप्ति में सहायक होता है। कर्म का फल व्यक्ति को भोगना पड़ता है, जिस प्रकार समस्त भौतिक जगत प्रकृति के नियमों से संचालित होता है, पूर्व जन्म के अच्छे बुरे कर्मों का फल व्यक्ति के नवीन जन्मों पर पड़ता है। संभवतः इसी कारण व्यक्ति अच्छे कर्म करने हेतु प्रेरित होता है। अच्छे कर्मों द्वारा ही व्यक्ति जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार व्यक्ति मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा चारित्रिक विकास द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण व्यक्तितत्व का विकास बौद्ध शिक्षा दर्शन का पवित्र उद्देश्य है। इस दृष्टि से वर्तमान शोध समस्या का औचित्य स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

शोध समस्या का कथन

बौद्ध शिक्षा दर्शन लाखों-करोड़ों भारतीयों को शिक्षा के माध्यम से पुनः प्राचीन भारतीय जीवन आदर्शो को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली अपने इस उद्देश्य को खो चुकी है। इसे पुनर्स्थापित करने के लिए बौद्ध शिक्षा दर्शन उपादेय सिद्ध हो सकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर तथा शैक्षिक प्रक्रिया पर प्रचुर मात्रा में धन व्यय किया जा रहा है परन्तु वर्तमान शिक्षा शिक्षार्थी के जीवन में चारित्रिक तथा नैतिक विकास की दिशा में अक्षम सिद्ध हो रही है, जिसका प्रमुख कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली का ठोस ऐतिहासिक एवं दार्शनिक धरातल पर खड़ा नहीं होना है। मनोरंजन तथा सांस्कृतिक चेतना के अभाव में सामाजिक जीवन नीरस, शुष्क एवं वीरान होता जा रहा है। वास्तविक सांस्कृतिक चेतना का लुप्त हो जाने का ही परिणाम है कि आज समाज विश्व-बंधुत्व एवं सर्वधर्मसमभाव की भावना भूलकर जाति-धर्म-वर्ग-क्षेत्रीयता के झगड़ों में फँसकर अशांति का जनक बन गया है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता खतरे में पड़ गयी है। जन-जीवन में सांस्कृतिक चेतना और भारतीय सांस्कृतिक एकात्मकता को जागृत करने हेतु नैतिक धार्मिक शिक्षा को पुनर्स्थापित करना परमावश्यक है। भारतीय चिन्तन में नैतिकता और धर्म समानार्थी हैं। बौद्ध शिक्षा दर्शन में धर्म को सर्वश्रेष्ठ स्थान

प्राप्त था परन्तु वर्तमान समय में धर्म का अनुचित अर्थ प्रयोग करते हुए नैतिकता से भिन्न माना जाने लगा है। भारतीय संस्कृति में धर्म, नैतिक मूल्य एवं सामाजिक जीवन को व्यवस्था प्रदान करने वाले सार्वभौमिक नियमों के रूप में माना गया है। **'धार्यते इति धर्मः'** जो धारण किया जाए वही धर्म है अर्थात व्यक्ति जिन गुणों को धारण करता है और जिनसे समाज की धारणा होती है, उसे धर्म कहा जाता है। नैतिकता वस्तुतः धर्म का भावात्मक तत्व है। धर्म और नैतिकता अविच्छिन्न है, दोनों में अटूट सम्बन्ध है।

अतएव वर्तमान शिक्षा प्रणाली में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए धर्म और जीवन के उस चरम लक्ष्य को हृदयंगम करना होगा, जो नैतिक उत्थान को जन्म देता है। मातृभूमि के प्रति भक्ति, समाज के साथ एकात्मकता की भावना, राष्ट्र का सम्मान, यह सभी कार्य शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा दर्शन का समावेश कर किए जा सकते हैं। बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली के अध्ययन द्वारा बौद्ध शिक्षा दर्शन में व्याप्त अच्छाइयों को अंगीकृत कर वर्तमान शिक्षा प्रणाली को समुन्नत तथा सोद्देश्यपरक बनाया जा सकता है, वर्तमान शिक्षा शिक्षार्थियों के भटकाव को रोककर उन्हें सही दिशा दी जा सकती है। बौद्ध साहित्य एवं तत्कालीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बौद्ध शिक्षा सर्वसुलभ, सरल, ज्ञान से परिपूर्ण एवं सर्वमान्य थे, धनी, निर्धन, उच्च-निम्न वर्ग, तथा अनेक राजकुमार भी बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में ज्ञान प्राप्ति

हेतु लालायित रहते थे, 'ब्राह्मणपुत्र भी बौद्ध शिक्षा केन्द्रों मे ज्ञान प्राप्त करना सौभाग्य मानते थे। सुदूरवर्ती क्षेत्रों तथा विदेशों से भी छात्र इन बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश हेतु उत्सुक रहते हैं, संघ में प्रवेश परीक्षाएं उत्तीर्ण करते थे तथा संघ के कठोर अनुशासन में ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिसका कारण मात्र बौद्ध शिक्षा में व्याप्त सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास की प्राप्ति का उद्देश्य होता था। प्रस्तुत शोध प्रबन्घ द्वारा बौद्ध दर्शन में व्याप्त शिक्षा की स्थिति, विस्तार पर विवेचना का प्रयास किया जा रहा है। जिससे बौद्ध शिक्षा में व्याप्त शिक्षा प्रणाली का उपयोग वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कर वर्तमान शिक्षा को भी बौद्धकालीन शिक्षा की भांति समुन्नत, सोद्देश्यपरक तथा सर्वग्राह्य बनाया जा सके यही शोधार्थी के अनुसंधान का लक्ष्य है।

शोध समस्या का परिभाषीकरण

परिभाषीकरण द्वारा किसी भी समस्या का मूल उद्देश्य तथा मूल आधार जाना जाता है वस्तुतः परिभाषीकरण से ही समस्या की पहचान संभव है। परिभाषीकरण के माध्यम से ही शीर्षक को आकार, पहचान तथा निश्चित रूप दिया जा सकता है। शीर्षक मूल मंतव्य एवं लक्ष्य का बोध होता है। किसी भी समस्या की सर्वप्रथम मान्यता उसके परिभाषीकरण के माध्यम से ही प्राप्त होती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध **"बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता"** के अन्तर्गत सम्बद्ध साहित्य यथा बौद्ध साहित्य के अध्ययन द्वारा तत्कालीन बौद्ध समाज में शिक्षा की स्थिति पर विचार किया गया है, बौद्ध शिक्षा केन्द्र क्या थे, इन शिक्षा केन्द्रों में किस प्रकार, किस समय, किसके द्वारा, किसको शिक्षा प्रदान की जाती थी, प्रदान की जाने वाली शिक्षा का स्वरूप क्या था? शिक्षा के लक्षण क्या थे? शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या था? पाठ्यक्रम में कौन से विषय सम्मिलित थे, शिक्षा का माध्यम क्या था? शिक्षा के प्रकार क्या थे, शिक्षण विधियां क्या थीं? बौद्ध शिक्षा प्रणाली के गुण तथा दोष क्या थे? उनमें किन सुधारों की आवश्यकता थी? बौद्ध शिक्षा प्रणाली में क्या नवीनता या मौलिकताओं का समावेशन हुआ था? बौद्ध साहित्य की स्थिति क्या थी, छात्र संकल्पना क्या थी? अध्यापन संकल्पना क्या

थी? शिक्षार्थी को कब से कब तक शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति थी? शिक्षा प्राप्ति के बाद विद्यार्थी का जीवन कैसा था? क्या शिक्षा का उपयोग उसके जीवन में था कि नहीं? सतत् शिक्षा थी या नही? यदि थी तो किस प्रकार की। स्त्री शिक्षा किस प्रकार प्रदान की जाती थी? सह शिक्षा का क्या अस्तित्व था? प्रौढ़ शिक्षा का क्या अस्तित्व था? शिक्षा में वैज्ञानिक, तार्किक अनुसंधान होते थे या नहीं, शिक्षा केन्द्र कितने थे, कैसे थे, शिक्षा केन्द्रों का विस्तार कहां तक था तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली में ऐसे कौन से तत्व हैं जिनका वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपयोग किया जा सकता है? इस शोध प्रबन्ध में इन तथ्यों पर विचार एवं चिन्तन करते हुए बौद्ध शिक्षा प्रणाली की वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता पर विचार किया गया है तथा प्राप्त निष्कर्ष एवं सुझाव द्वारा शोध कार्य सम्पन्न किया जा रहा है।

शोध प्रबन्ध की सीमाएं

शिक्षा दर्शन का अध्ययन न केवल छात्र के लिए, अपितु शिक्षक के लिए भी आवश्यक है। शिक्षा दर्शन शिक्षण स्वरूप निश्चित करता है अतः शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा दर्शन का महत्व समझकर उसका भली-भांति ज्ञान प्राप्त करें । शिक्षा दर्शन के ज्ञान में शिक्षक साध्य और साधन के मध्य भेद नहीं समझ पाता, वह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है। शिक्षा दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगों पर मौलिक विचार प्रस्तुत करता है किन्तु इसका प्रमुख कार्य शैक्षिक उद्देश्यों के विषय में विचार करना है। हम सदा साधनों की बात करते हैं, साध्य भूलते जा रहे हैं, साधन का अपना कोई महत्व नहीं होता, इसका गौरव साध्य के संदर्भ में ही होता है।[1] वर्तमान साधनों का महत्व साध्यों से भी अधिक बढ़ गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विभिन्न परीक्षणों द्वारा छात्र की बुद्धि की जांच की जाती है। उसकी योग्यता का पता भी लगा लिया जाता है परन्तु शिक्षा के उद्देश्यों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। शिक्षा दर्शन ही शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति उन्मुख करने का कार्य कर सकता है। शिक्षा के उद्देश्यों में विभिन्नता पायी जाती है। यह विभिन्नता जीवन दर्शन के विभिन्नता के कारण है, जीवन दर्शन की भिन्नता देशकाल के कारण हो सकती है। देश काल, वातावरण के अनुरूप आचार्यवान बनने में सहायता प्रदान

---

1. शिक्षा दर्शन, पृ0 85 प्रो0 राम शकल पाण्डेय

कर सकता है और भाड़े के गुरू की अपेक्षा सच्चा गुरू बनने की प्रेरणा देता है अतः शिक्षक को शिक्षा दर्शन का ज्ञान होना परम आवश्यक है।[1] वस्तुतः सच्चा शिक्षक, सच्चा दार्शनिक होता है। शिक्षा दर्शन का सम्यक अध्ययन निम्नलिखित विभागों के अन्तर्गत किया जाता है –

1. प्रकृतिवाद
2. आदर्शवाद
3. वैदिक शिक्षा दर्शन
4. उपनिषदिक शिक्षा दर्शन
5. गीता-शिक्षा-दर्शन
6. चार्वाक-शिक्षा-दर्शन
7. बौद्ध-शिक्षा-दर्शन
8. जैन-शिक्षा-दर्शन
9. व्यावहारिकतावाद
10. यथार्थवाद
11. अस्तित्ववाद ।

---

[1]. शिक्षा दर्शन, पृ0 94 प्रो0 राम शकल पाण्डेय

आरम्भिक विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा-दर्शन का सम्यक अध्ययन उपरोक्त विभागों के अन्तर्गत किया जाता है, किन्तु विस्तार एवं समय को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध 'बौद्ध-शिक्षा-दर्शन' तक ही सीमित रखा गया है। वर्तमान शोध को अधिक वैज्ञानिक, तार्किक, विवचेनात्मक, बोधात्मक एवं वस्तुनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से निम्न प्रकार से सीमाबद्ध किया गया है -

1. प्रस्तुत शोधकार्य वैधता एवं विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए विदेशी यात्रियों के विवरणों, बौद्ध साहित्य के साक्ष्यों तथा जातक कथाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

2. प्रस्तुत शोध कार्य को अधिक विस्तृत न करने के उद्देश्य तथा समयाभाव को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षण केन्द्रों के आर्थिक पक्ष का विवेचन नहीं किया गया है।

3. प्रस्तुत शोधकार्य में बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है तथा बौद्ध दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों को शोध का विषय नहीं बनाया गया है।

4. प्रस्तुत शोधकार्य को बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थो तक ही सीमित रखा गया है।

5. प्रस्तुत शोध कार्य को बौद्ध साहित्य की अधिक विवेचना न कर उसमें निहित शैक्षिक तत्वों पर ही विचार किया गया है।

6. प्रस्तुत शोध कार्य में बौद्ध कालीन राजनैतिक व्यवस्थाओं पर विवेचना न कर मात्र शिक्षा सम्बन्धी तत्वों पर विचार किया गया है।

7. प्रस्तुत शोध कार्य में बुद्ध के जीवन, क्रियाकलापों एवं उपदेशों को उनके शिक्षा दर्शन तक ही सीमित रखा गया है।

8. प्रस्तुत शोध कार्यो में शिक्षण संस्थाओं की आंकिक गणना विशेष ध्यान न देकर शैक्षिक गुणवत्ता पर विचार किया गया है।

वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध कार्य में अनुसंधानकर्ता ने वर्तमान अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये हैं :-

1. बौद्ध दर्शन के तत्व मीमांसात्मक पक्ष का संक्षिप्त अध्ययन करना ।
2. बौद्धदर्शन के ज्ञान मीमांसात्मक पक्ष का संक्षिप्त अध्ययन करना।
3. बौद्ध दर्शन के मूल्य मीमांसात्मक पक्ष का संक्षिप्त अध्ययन करना ।
4. बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति का निम्नलिखित बिन्दुओं के सन्दर्भ में विवेचन करना ।

    क. शिक्षा के उद्देश्य

    ख. शिक्षा का पाठ्यक्रम

    ग. शिक्षण विधि

    घ. छात्रों की स्थिति

    ङ अध्यापक की स्थिति

    च. प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा

    छ. बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार एवं प्रभाव

5. बौद्ध दर्शन में शिक्षा एवं सहशिक्षा के विकास तथा समाज पर इसके प्रभाव का अध्यन करना ।

6. बौद्ध शिक्षा केन्द्रों का संक्षिप्त अध्ययन करना तथा इन शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज में बौद्ध शिक्षा तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव का अध्ययन करना साथ ही तत्कालीन समाज की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं भौतिक प्रगति का अध्ययन करना ।

7. प्रस्तुत शोध कार्य के विवेचन द्वारा निष्कर्ष निकालना तथा निष्कर्ष के आधार पर सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य को अनुसंधानकर्ता द्वारा पालि ग्रन्थों, संस्कृत ग्रंन्थों, अनुदित ग्रन्थों तथा चीनी यात्रियों ह्वेनसांग एवं इत्सिंग के विवरणों का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान शोधकार्य में व्यापक रूप से विचार करने की दृष्टि से इसे सात परिवृत्तों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में अनुसंधानकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध समस्या की पृष्ठभूमि, शोध समस्या का औचित्य, शोध समस्या का कथन, शोध प्रबन्ध की सीमाएं, शोध विधि तथा वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता, महत्व एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में अनुसंधानकर्ता ने शोध प्रबन्ध से सम्बद्ध साहित्य का अर्थ, सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पर विचार किया गया है साथ ही शोध समस्या से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा ऐतिहासिक साधनों का मूल्यांकन भी किया है, सम्बद्ध साहित्य की विवेचना तथा वर्तमान शोध से तुलना करने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय में बौद्धधर्म एवं दर्शन का संक्षिप्त परिचय, बुद्ध की मूलदेशना आदि का संक्षिप्त बौद्ध धर्म की तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल मीमांसा के अन्तर्गत किया है।

चतुर्थ अध्याय में अनुसंधानकर्ता द्वारा बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति यथा शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, छात्र अध्यापक की स्थिति, प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार एवं प्रभाव की भी विवेचना की गयी है।

पंचम अध्याय में अनुसंधानकर्ता द्वारा बौद्ध काल में स्त्री-शिक्षा एवं सह शिक्षा का परिचय देते हुए स्त्री शिक्षा एवं सह शिक्षा के विकास का वर्णन किया है साथ ही साथ स्त्री सह शिक्षा के विकास का वर्णन किया है साथ ही साथ स्त्री एवं सह-शिक्षा का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना की गयी है।

षष्टम् अध्याय बौद्ध शिक्षा केन्द्रों से सम्बन्धित है इस अध्याय में बौद्ध, संघों, बिहारों तथा विश्वविद्यालयों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करते हुए अनुसंधानकर्ता द्वारा उनके पाठ्यक्रम, अध्ययन विधि, प्रवेश विधि, परीक्षा विधि पर भी विवेचना की गयी है तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन शिक्षा केन्द्रों ने किस प्रकार तत्कालीन शिक्षा को प्रभावित किया, समाज तथा राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दिया।

अन्तिम अध्याय अर्थात् सप्तम अध्याय में अनुसंधानकर्ता ने शोध का संक्षिप्त विवरण देते हुए प्राप्त निष्कर्ष की समीक्षा की है तथा निष्कर्ष के

आधार पर सुझाव दिए है, साथ ही साथ भावी अध्ययन के लिए भी सुझाव देने का प्रयास किया है। इस प्रकार अनुसंधानकर्ता प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा बौद्ध शिक्षा दर्शन व शिक्षा प्रणाली की वर्तमान में प्रासंगिकता का विवेचना करना परमावश्यक बताया है।

अनुसंधान में किसी व्यापक समस्या के सर्वेक्षण मात्र से उत्तम है, संक्षिप्त समस्या का गहन अध्ययन तथा विवेचना करना। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध कार्य अनुसंधानकर्ता ने शोध विधि को दो भार्गों में विभाजित किया है जिसका शोध कार्य वैज्ञानिक, आलोचनापरक एवं प्रमाणिक हो–

अ. शोध के स्रोत

1. प्राथमिक स्रोत
2. गौण स्रोत
3. तृतीयक स्रोत

ब. बाह्य तथा आन्तरिक आलोचना

1. बाह्य आलोचना
2. आन्तरिक आलोचना

(अ) **शोध के स्रोत :** शोध के प्रायः दो स्रोत होते है :-

1. **प्राथमिक स्रोत :** प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं जो व्यक्ति, घटना या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते हैं। इस प्रकार के स्रोत घटना से तात्कालिक सम्बन्ध रखने वाले होते हैं, जिसके समक्ष वास्तव में घटना घटित होती है, ये स्रोत अधिक विश्वसनीय होते हैं। प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने निम्नलिखित को प्राथमिक स्रोत के रूप मे स्वीकार किया हैं :-

क. **त्रिपिटक :**- त्रिपिटक बौद्ध दर्शन की आधार शिला है। इनमें बुद्ध की जीवन की वास्तविक घटनाएं, तत्कालीन समाज एवं शिक्षा की स्थिति का वर्णन है। त्रिपिटक वस्तुतः लंका में तीन पितरों में रखे गये थे, इसलिए इनका नाम 'पिटक' पड़ गया। त्रिपिटक कोई ग्रन्थ नहीं है अपितु तीन ग्रन्थों-विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक का संयुक्त नाम है। ये ग्रन्थ अत्यधिक प्राचीन है और इनमें वर्णित सामग्री प्रमाणिक है। मूल रूप से पालि भाषा में रचित त्रिपिटकों का अनुवाद हिन्दी, सिंहली, चीनी, जापानी, वर्मी तथा तिब्बती आदि भाषाओं में हुआ है। त्रिपिटकों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत् है।

विनय पिटकः- भगवान ने भिक्षुओं के आचरण का नियमन करने के लिए जो नियम बनाए थे उन्हें 'प्रतिमोक्ष' या पालिमोक्ख कहा जाता है।

इन्हीं नियमों की चर्चा विनय पिटक में है। 'प्रतिमोक्ष' की महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि भगवान ने स्वयं कहा था कि उनके न रहने पर प्रतिमोक्ष और शिक्षापदों के कारण भिक्षुओं को अपने कर्तव्यों का बोध होता रहेगा और इस प्रकार संघ स्थायी होगा। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं-

अ. **सुत्त विभंग**- विनय पिटक का पहला भाग 'सुत्त विभंग' कहलाता है। इसमें प्रायश्चित के नियम है, जिनकी संख्या 227 है।

ब. **खन्धक**- विनय पिटक का दूसरा भाग 'खन्धक' कहलाता है। महावग्ग और चुल्लवग्ग दोनों खन्धक में समाविष्ट हैं। महावग्ग में प्रवज्या, उपोसथ, वर्षावास, प्रवारण आदि से सम्बन्धित नियमों का संग्रह है तथा भगवान की साधना का रोचक वर्णन है। चुल्लवग्ग में भिक्षुओं के पारस्परिक व्यवहार एवं संघाराम सम्बन्धी नियमों तथा भिक्षुणियों के विशेष आचार का संग्रह है।

स. **परिवार**- विनय पिटक का अंतिम भाग 'परिवार' है इसमें वैदिक अनुक्रमणिकाओं की भांति कई तरह की सूचियों का समावेश है।

सुत्त पिटक- भगवान के संवादों एवं लोक हितकारी उपदेशनाओं का संग्रह सुत्तपिटक में प्राप्त होता है। इस पिटक में पांच निकाय हैं।

अ. दीर्घ निकाय– इसमें 34 सुत्त हैं, ये सुत्त लम्बे हैं, इसलिए इन्हें दीघ (दीर्घ) कहा गया है। इनमें शील, समाधि और प्रज्ञा का विस्तृत एवं रोचक वर्णन है। इस निकाय द्वारा तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त होती है और इस सम्बन्ध में बौद्ध मन्तव्य भी दृष्टिगत होता है।

(ख) मज्झिम निकाय–

इसमें 152 सुत्त हैं, ये सुत्त मध्यम प्रकार के हैं। दीर्घनिकाय के सदृश इन सुत्तों में भी बुद्ध के उपदेशों एवं किए गए संवादों का संग्रह है। इसमें चार आर्य सत्य, निर्वाण, कर्म, आत्मवाद, ध्यान सम्यक दृष्टि आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों का वर्णन है। जातक शैली में भी कई कथाएं इस निकाय में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध के कई प्रधान शिष्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इस निकाय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'महापरिनिब्बमसुत्त' है जो बुद्ध के निर्वाण काल का चित्र प्रस्तुत करता है।

(ग) संयुक्त निकाय–

इस निकाय में 56 संयुक्तों का संग्रह है। इन संयुक्तों में भी बौद्ध दर्शन से समबन्धित सामग्री प्राप्त होती है। अंतिम संयुक्त 'सच्चर्स

युक्त' में चार आर्य सत्यों की विवेचना की गयी है।

(घ) **अंगुत्तर निकाय**–

इसमें 2308 सुत्तों का संग्रह है और उनके एक वस्तु से लेकर ग्यारह वस्तुओं का समावेश क्रमशः किया गया है।

(ड.) **खुद्दक निकाय**–

इसमें छोटे-छोटे उपदेशों का संग्रह है। इसमे निम्नलिखित ग्रन्थों का समावेश है–

1. **खुद्दक पाठ**– इसमें बौद्ध धर्म प्रवेश हेतु भिक्षुओं का किस बात की जानकारी आवश्यक है, का संग्रह है जैसे त्रिशरण, शिक्षापद, पुर, शरीर के अवयवों का संग्रह, एक से दस तक की श्रेय वस्तुओं का संग्रह आदि।

2. **धम्मपद**–इसमें नैतिक उपदेशों का संग्रह है इसमें धार्मिक और नैतिक विषय के 423 श्लोकों का संग्रह है। यह ग्रन्थ बौद्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

3. **सुत्त निपात**–इसमें 70 सूत्र हैं जो छन्दोबद्ध हैं, उनमें 5 विभाग हैं। यह बुद्ध के प्राचीनतम उपदेशों का संग्रह है।

4. **थेरगाथा**–इस ग्रन्थ में थेर अर्थात स्थविर वृद्ध पुरूष के काव्यों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में बुद्धकालीन पुरूषों की दशा का ज्ञान होता है।

5. **थेरीगाथा**–इस ग्रंथ में स्थविर वृद्ध स्त्रियों के काव्यों का संग्रह है, इससे बौद्धकाल में भिक्षुणियों की दिनचर्या का बोध होता है।

6. **उदान**–इस ग्रन्थ में उन बातों का वर्णन है जो किसी दृश्य को देखकर सहसा भगवान के मुख से निकल पड़ी, शिष्यगण भगवान के उन वचनों को लिपिबद्ध कर लेते हैं, इस प्रकार के 82 वचनों का संकलन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है।

7. **जातक**–भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म के सदाचारों को व्यक्त करने वाली 547 कथाओं का संग्रह जातक ग्रन्थ में है। नीतिशास्त्र की दृष्टि से इन कथाओं की तुलना में अन्य ग्रन्थ दुर्लभ हैं। शिक्षा व्यवस्था की दृष्टि से जातक ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, गुरू-शिष्य सम्बन्ध, दण्ड, गुरू तथा शिष्य के कर्तव्य, शैक्षिक विधियां, नियम तथा शिक्षा केन्द्रों का ज्ञान जातकों में पर्याप्त रूप से उपलब्ध है।

8. **बुद्धवंश**– भगवान के पहले होने वाले 24 बुद्धों के जीवन चरित्र का वर्णन इस ग्रन्थ में है।

9. **अवदान**–इस ग्रन्थ में अर्हतों के पूर्वभवों के सुचरितों का वर्णन मिलता है।

10. **इतिवुत्तक**–इसमें बुद्ध के 120 वचनों का संग्रह है। भगवान ने ऐसा कहा इस मंतव्य से जिन गाथाओं और गद्यांशों का संग्रह किया गया वह संग्रह इस ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ में उपमा का सौन्दर्य एवं कथन की सरलता दृष्टव्य है।

11. **परिसंमिदामग्ग**–इस ग्रन्थ में प्राणायाम, ध्यान कर्म, आर्यसत्य, मैत्री आदि विषयों का निरूपण है।

12. **चरियापिटक**–यह खुद्दक निकाय का अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें 35 जातकों का संग्रह है।

13. **निद्देश**– यह ग्रन्थ सुत्त निपात के अवढगवग्ग और खग्गविसाणसुत्त की व्याख्या करता है।

14. **वेतवत्थु**– इस ग्रन्थ में प्रेतयोनि का वर्णन किया गया है।

15. **विमानवत्थु**–इस ग्रन्थ में देवयोनि का वर्णन किया गया है।

अभिधम्म पिटक–भगवान के उपदेशों के आधार पर बौद्ध तत्वज्ञान की विवेचना अभिधम्म पिटक में प्राप्त होती है, इस पिटक में निम्नलिखित सात ग्रन्थों का समावेशन है–

1. **कथावत्थु**–प्रश्नोत्तर शैली में रचित इस ग्रन्थ का बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास के ज्ञान के लिए सर्वाधिक है। इसकी रचना मोग्गलिपुत्त विस्स ने की थी। आत्मा आदि के विषय में प्रश्न प्रस्तुत बौद्ध मन्तव्य स्थापित किया गया है।

2. **पठान**–इस ग्रन्थ में नाम और रूप के 24 प्रकार कार्य-कारण भाव-सम्बन्ध की चर्चा है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि केवल निर्वाण ही असंस्कृत है, शेष सब धर्म संस्कृत हैं।

3. **पुग्गलिपुंजति**–इस ग्रन्थ में मनुष्य के विभिन्न अंगों में वर्गीकरण किया गया है।

4. **विभंग**–इस ग्रन्थ में धर्मों के वर्गीकरण को आगे बढ़ाया गया है जिनका वर्गीकरण 'धम्मसंगणि' ग्रन्थ में मिलता है।

5. **धातुकथा**–धातुओं का प्रश्नोत्तर रूप में व्याख्यान धातु कथा में प्राप्त होता है।

6. **यमन**–कथावत्थु ग्रन्थ में जिन शंकाओं का समाधान नहीं हो पाया है उनका समाधान यमक में किया गया है।

7. **धम्मसंगणि**–इस ग्रन्थ में धर्मो का वर्गीकरण एवं व्याख्या की गयी है।

(ख) ललित विस्तर–

'ललित विस्तर' महायान सम्प्रदाय का मिश्रित संस्कृत में निबद्ध है यह अत्यन्त प्राचीन भारतीय बौद्ध संस्कृति के उत्कृष्टतम निर्दशनों का महाकोष है, इसमें बुद्धचरित का वर्णन है। भूमण्डल पर भगवान ने जो क्रीड़ा (ललित) की उसका वर्णन इस ग्रन्थ में होने के कारण इसका नाम ललित विस्तर पड़ा। इस ग्रन्थ में 27 परिवृत्त हैं जिसमें दो परिवृत्त शैक्षिक अध्ययन एवं परिस्थिति के दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

(ग) मिलिन्द प्रश्न–

'मिलिन्द प्रश्न' ग्रन्थ के लेखक का नाम विवादित है। परन्तु इसकी प्रामाणिकता एवं प्राचीनता असंदिग्ध है। इस ग्रन्थ में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के ग्रीक सम्राट मीनाण्डर (मिलिन्द) तथा बौद्ध आचार्य नागसेन के संवादों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन के जटिल प्रश्नों जैसे निर्वाण, कर्म, अनात्मवाद, क्षणभंगुरवाद एवं पुनर्जन्म आदि सरल उपमाओं द्वारा तार्किक दृष्टि से सुलझाने का प्रयास किया गया है। बुद्धकालीन शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि पर यह ग्रन्थ पर्याप्त जानकारी प्रदान करता है।

(घ) ह्वेनसांग का विवरण–

ह्वेनसांग का जन्म 605 ई0 में चीन में हुआ, ह्वेनसांग बौद्ध भिक्षु था,

वह बहुत ज्ञान पिपासु तथा सत्य की खोज में निरन्तर लगा रहता था, इसी की खोज में वह सम्राट हर्षवर्धन के शासन काल मे भारत आया, तत्कालीन नरेश हर्षवर्धन स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी था। उस समय बौद्ध धर्म उच्च सीमा पर था। ह्वेनसांग ने बौद्ध धर्म तथा तत्कालीन बौद्ध शिक्षा का वर्णन किया जो कि उसके प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित है, उसने जो देखा वही लिखा अतएव ह्वेनसांग का विवरण प्रमाणिक है। ह्वेनसांग ने स्वयं नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था तथा तत्कालीन शिक्षणविधि, पाठ्यक्रम, गुरू-शिष्य संबंध आदि का विस्तार से वर्णन किया है। ह्वेनसांग के मित्र हुई-ली ने **'ह्वेनसांग की जीवनी'** नामक ग्रन्थ की रचना की जिससे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है।

2. गौण स्रोत-

इसमें अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है, इनका अध्ययन करने एवं विश्लेषण में विशेष सावधनी रखनी होती है। प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने निम्नलिखित को गौण स्रोत के रूप में स्वीकार किया है-

1. **इत्सिंग का विवरण**-इत्सिंग एक चीनी यात्री था इसने सातवीं शताब्दी (671-695 ई0) में भारत की यात्रा की तथा भारतवर्ष की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का अत्यन्त प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। इत्सिंग ने तत्कालीन बौद्ध शिक्षा

केन्द्रों के सम्बन्ध में भी विस्तार से वर्णन किया है। इत्सिंग ने सर्वास्तिवाद के समग्र विनय पिटक का चीनी भाषा में अनुवाद किया, तथा प्रचलित विनय के नियमों पर स्वयं एक ग्रन्थ लिखा था। इत्सिंग का विवरण बौद्ध दर्शन तथा शिक्षा दोनों की दृष्टि से उपयोगी है।

2. **अवदान साहित्य**–अवदान (पालि मे अपदान) का अर्थ असाधारण, अद्भुत कार्य है। अवदान कथाएं कर्म प्राबल्य को सिद्ध करने की दृष्टि से लिखी गयी हैं। अवदान कथाओं का सर्वाधिक प्राचीन संग्रह अवदानशतक है। तीसरी शताब्दी में इसका चीनी अनुवाद हुआ था किसी किसी अवदान में बोधिसत्व की भी कथा है किन्तु कुछ ऐसे भी अवदान हैं जिनमें अतीत की कथा का कोई उल्लेख नहीं है। कुछ अवदान 'व्याकरण' के रूप में हैं। अवदान साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ "दिव्यावदान" है यह मूलतः हीनयान का ग्रन्थ है। यद्यपि इसके कुछ अंश महायान से सम्बन्धित हैं। दिव्यावदान में दीर्घागम, उदान और स्थविरगाथा आदि के उद्धरण प्रायः मिलते हैं। 'दिव्यादान' में 'विनय' से अनेक अवदान शब्दशः उद्धृत किए गए हैं, कहीं–कहीं बौद्ध भिक्षुओं की दिनचर्या के नियम भी दिये गये हैं। यह ग्रन्थ बौद्ध धर्म दर्शन तथा तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

3. **अश्वघोष साहित्य**–अश्वघोष सम्राट कनिष्क के समकालीन थे। सम्राट कनिष्क स्वयं बौद्ध धर्म के मतावलम्बी थे, उन्होंने बौद्ध धर्म का अत्यधिक

प्रचार-प्रसार किया था। अश्वघोष बौद्ध थे उन्होंने अपनी रचनाओं मैं बौद्ध धर्म द्वारा प्रचार-प्रसार किया। अश्वघोष ने कुल तीन ग्रन्थों की रचना की-

बुद्ध चरित

सौन्दरानन्द

सारिपुत्र प्रकरण

बुद्धचरित में 28 सर्ग हैं। बुद्ध कथा, भगत्प्रसूति से आरम्भ होती है तथा संवेगोत्पत्ति, अभिनिष्क्रमण, मार विजय, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, परिनिर्वाण आदि घटनाओं का वर्णन करते हुए प्रथम धर्म संगीति और अशोक के राज्यकाल पर समाप्त होती है। समस्त भारत में तथा दक्षिण समुद्र के देशों में बुद्धचरित अत्यन्त लोकप्रिय था।

सौन्दरानन्द में 18 सर्ग हैं, इस ग्रन्थ में बुद्ध के भाई नन्द के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा वर्णित है।

शारिपुत्र प्रकरण में 9 अंक हैं यह नाट्यग्रन्थ हैं। इसमें सारिपुत्र तथा मौदगल्यायन के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा वर्णित है।

अश्वघोष कृत साहित्य से बौद्ध दर्शन एवं शिक्षा विस्तार की स्थिति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

4. **अन्य ग्रन्थ**–बौद्ध धर्म, दर्शन एवं शिक्षा से सम्बन्धित कुछ और ग्रन्थ हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। वे ग्रन्थ हैं–हर्षचरित, राजतरंगिणी, नागानन्द, रत्नावली, प्रियदर्शिका, कादम्बरी, महावस्तु और विसुद्धिमग्गो आदि।

''विसुद्धिमग्गो' की रचना बुद्धघोष ने की थी। यह ग्रन्थ एक तरह से समस्त पिटक ग्रन्थों की कुंजी है, अतएव इसे त्रिपिटक अट्ठकथा भी कहा जाता है। इसमें शील, समाधि और प्रज्ञा का 23 अध्यायों में विस्तार से वर्णन है। 'महावस्तु' बौद्ध दर्शन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। महावस्तु का तात्पर्य है ''महान विषय या कथा'' अर्थात उपसम्पदा, इत्यादि विनय सम्बन्धी कथा। महावस्तु में भी बुद्ध के जीवन चरित्र तथा संघ स्थापना का वर्णन मिलता है। महावस्तु के प्रारम्भ में ही चार बोधिसत्व चर्याओं का वर्णन किया गया है, इन चार चर्याओं की पूर्ति से बोधिसत्व बुद्धत्व की प्राप्ति करते हैं। महावस्तु में भगवान को लोकोत्तर माना गया है। बुद्ध का जीवन ही महावस्तु का मुख्य उद्देश्य है। भाषा की दृष्टि से महावस्तु का पद्यमय भाग ललित विस्तर से प्राचीन है, महावस्तु में कई भाग ऐसे हैं जो पालि निकायों से मिलते हैं। इस ग्रन्थ का आधा भाग पालि जातकों का अनुसरण करता है क्योंकि इसका आधा से अधिक भाग जातक कथाओं से भरा है। एक ओर विसुद्धिमग्गों, एवं महावस्तु का महत्व दार्शनिक दृष्टिकोंण से हैं, वहीं दूसरी ओर हर्षचरित, राजतरंगिणी, कादम्बरी का महत्व शैक्षिक दृष्टिकोंण से है, इन ग्रन्थों से तथा

सम्राट हर्ष द्वारा रचित नागानन्द, प्रियदर्शिका तथा रत्नावली ग्रन्थों से तत्कालीन बुद्ध शिक्षा का बोध होता है। संघ तथा बिहारों में शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था तथा शैक्षिक वातावरण का ज्ञान हमें इन ग्रन्थों के माध्यम से प्राप्त होता है।

3. **तृतीयक स्रोत :**

तृतीयक स्रोत के अन्तर्गत उन पुस्तकों को रखा जाता है जो तत्कालीन पुस्तकों के वक्तव्यों, विचारों व कथनों को विभिन्न दृष्टिकोंण से अभिव्यक्त करते हैं। ये स्रोत आलोचनात्मक एवं समग्रता के लिए आवश्यक भी माने जाते हैं। इस विषय पर डॉ0 राधाकृष्णन द्वारा लिखी गयी पुस्तक भारतीय दर्शन उपयोगी है। इसमें बौद्धधर्म के दर्शन का विस्तृत उल्लेख किया है, जिनमें नैतिकता के विकास से जुड़े हुए भी विषय हैं। इस पुस्तक का दसवां, ग्यारहवां अध्याय बौद्धिक दर्शन से सम्बन्धित है। ग्यारहवें अध्याय में ज्ञान के प्रकार, अविद्या व आलस्य बौद्ध दार्शनिक साहित्य आदि का वर्णन किया गया है। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय द्वारा लिखित बौद्ध धर्म के इतिहास का विकास अधिक उपादेयी पुस्तक है। इसमें बौद्ध संघ, कार्यप्रणाली, भिक्षुओं के दायित्व, इतिहास, साहित्य, दार्शनिक मत, शिक्षा पद्धति बौद्ध धर्म के महान आचार्यो आदि का वर्णन किया गया है। प्रो0 के0टी0एस0 सराओ द्वारा लिखित प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म एक उपयोगी पुस्तक है। इसमें महिलाओं के प्रति बौद्ध धर्म के दृष्टिकोंण, शिक्षा की स्थिति आदि का विश्लेषण किया गया है। भारतीय

दर्शन का इतिहास में एस0एन0दास गुप्ता द्वारा बौद्ध दर्शन का विस्तृत उल्लेख किया है। इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकें भी बौद्ध दर्शन के अध्ययन में उपयोगी रही हैं। जिनमें जी0एन0 झा की प्राचीन भारतीय एक रूपरेखा, चोपड़ा पुरी दास की भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इतिहास डॉ0 जय नारायण मिश्र का भारत का सामाजिक इतिहास, रोमिला थापर का भारत का इतिहास, नीरज श्रीवास्तव का मध्यकालीन भारतीय प्रशासन एवं संस्कृति सम्मिलित है। इन पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा, समाज व संस्कृति का विश्लेषण करने में सुगमता आयी।

बाह्य तथा आन्तरिक आलोचना–

आलोचना द्वारा विश्वसनीयता का बोध होता है। वस्तुतः मूल्यांकन की वह प्रक्रिया जिससे विश्वसनीय प्रदत्तों को प्रमाणीकरण होता है आलोचना कहलाती है। आलोचना किसी भी कार्य का दर्पण होती है, विभिन्न स्रोतों द्वारा प्रदत्त कितने वैध, विश्वसनीय तथा सार्थक है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाता है। आलोचना दो प्रकार की होती है–

1. **बाह्य आलोचना–** बाह्य आलोचना के अन्तर्गत प्रयुक्त स्रोतों तथा साधनों की वास्तविकता एवं प्रमाणिकता का पता लगाने का प्रयास किया जाता है जिससे भ्रान्तिपूर्ण, मिथ्या प्रलेखों एवं प्रतिवेदनो से बचा जा सके।

इसमें प्रलेखों के लेखकों, समय की सत्यता स्थापित करने हेतु भाषा, हस्तलेख, अक्षर विन्यास आदि का गहन परीक्षण, एवं प्रकाशक की विश्वसनीयता आदि प्रमाणित की जाती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त साहित्य यथा त्रिपिटक तथा त्रिपिटक के ग्रन्थों, ललित विस्तर, मिलिन्द प्रश्न, विदेशी यात्रियों के विवरण स्वतः ही प्रमाणित हैं तथापि इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया गया है कि कोई तथ्य भ्रमित करने वाला न हो, विदेशी यात्रियों के विवरण अत्यधिक प्रमाणिक हैं क्योंकि विदेशी यात्रियों ने जैसा देखा वैसा ही लिख दिया, उनके वृतान्तों में समय-काल का भी प्रमाणिक वर्णन है। जैसे ह्वेनसांग, फाह्यान ने तत्कालीन समाज में धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति का यथारूप वर्णन किया है। वस्तुतः विदेशी यात्रियों के यात्रा वृतान्त अन्य साहित्य की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक एवं विश्वसनीय हैं जिसके प्रयोग से शोधकार्य में प्रमाणिकता एवं विश्वसनीयता है, तथा शोधकार्य सत्य निष्कर्षों की दिशा में है।

2. **आन्तरिक आलोचना**- आन्तरिक आलोचना स्रोत की विषयवस्तु के विश्लेषण द्वारा उसकी यथार्थता ज्ञात करने के प्रक्रम को कहते हैं। यह तथ्य तथा आंकड़ों की वैधता का मूल्यांकन करती है। कहीं-कहीं शाब्दिक अर्थो का भ्रमित कर देना निष्कर्ष को प्रभावित कर देता है।

सम्भव है लेखक ने पूर्वाग्रह या प्रमादवश कोई तथ्य प्रमाणित करने का प्रयास किया हो या उसकी ईमानदारी में कोई कमी हो। श्रीमती रीज डेंविड्स ने पूर्वाग्रह से ग्रसित मानसिकता में त्रिपिटक को बुद्ध के विचारों का दर्पण नहीं माना था। उनका मत था कि त्रिपिटक बुद्ध के विचारों का संकलन नहीं है। इसी प्रकार कीथ ने भी त्रिपिटक को बुद्धवचन नहीं माना, मात्र पालि भाषा को विवादित मानकर तथा भारत में एक भी त्रिपिटक को रचित न होने का कुतर्क देकर त्रिपिटक को बुद्ध के विचारों का संकलन न मानना या बुद्ध विचार न मानना एक पूर्वाग्रह से ग्रसित मानसिकता का ही उदाहरण है। डॉ0 राधाकृष्णन ने भी बुद्ध विचारों के प्रति असहमति व्यक्त की थी। परन्तु स्वयं डॉ0 राधाकृष्णन कीथ, श्रीमती रीजडेविड्स ही अपने विचारों में ही अन्तर्द्वन्द्व का शिकार थे कि वास्तविक सत्य के दर्शन नही कर सके। इस प्रकार हम पाते हैं कि पूर्वाग्रह या प्रमादवश या स्वप्रशंसा में कोई भी तथ्य सिद्ध करना भी दोषपूर्ण है, अनुसंधानकर्ता को इन सब तथ्यों पर गहनता से विचार करते हुए, विश्लेषणात्मक पद्धति से सर्वमान्य तथ्य की पुष्टि करना चाहिए, तभी शोधकार्य सही निष्कर्ष व सुझाव देने का कार्य सम्पादित कर सकेगा जो किसी भी अनुसंधान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है।

****

द्वितीय अध्याय

सम्बद्ध साहित्य

सम्बद्ध साहित्य का अर्थ

साहित्य से किसी भी समाज के तत्कालीन राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास का बोध होता है। सृष्टि की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसका इतिहास से सम्बन्ध न हो, अतएव साहित्य इतिहास से असम्बद्ध नहीं है। साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं व मानवीय क्रिया कलापों के स्थान पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं, वैसे, देखा जाए तो साहित्यिक रचनाएं भी मानवीय क्रिया कलापों से भिन्न नहीं हैं, अपितु वे विशेष वर्ग के मनुष्य की विशिष्ट क्रियाओं का सूचक है, दूसरे शब्दों में, साहित्यिक रचनाएं साहित्यकारों की सर्जनात्मक क्रियाओं और प्रवृत्तियों का सूचक होती हैं। किसी भी साहित्य की विकास-प्रक्रिया के अध्ययन के लिए सम्बन्धित निम्न पांच तत्वों पर विचार किया जाता है-

(क) सर्जन शक्ति

(ख) परम्परा

(ग) वातावरण

(घ) द्वन्द्व

(ड.) सन्तुलन

वस्तुतः यह सिद्धान्त सृष्टि की सामान्य विकास प्रक्रिया से सम्बन्धित है, संक्षेप में हम कह सकते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में प्राकृतिक सर्जन शक्ति अर्थात साहित्यकार की नैसर्गिक प्रतिभा परम्परा (सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्परा) और वातावरण (युगीन परिस्थितियों, प्रवृत्तियों तथा चेतना) के द्वन्द्व से प्रेरित होकर ही गतिशील रहती है जिसका चरम लक्ष्य द्वन्द्व के दोनों पक्षों में सन्तुलन स्थापित करना होता है। बौद्ध दर्शन भी तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति से प्रभावित है, बौद्ध धर्म ने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों से प्रभावित होकर समाज के उन्नयन हेतु प्रयास किया।

ई0पू0 पांचवीं-छठीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी ई0 तक बौद्ध धर्म और दर्शन का काल माना जाता है। बौद्ध साहित्य हमें निम्न दो भाषाओं में प्राप्त होता है-पालि और संस्कृत।

पाली-

भगवान ने सद्धर्म का उपदेश जनभाषा में दिया था जो मध्य मण्डल में बोली जाती थी। यह भाषा मागधी थी जो कालान्तर में 'पालि' नाम से अभिहित की गयी। बुद्धवचन इसी पालि भाषा में सुरक्षित हैं। ये बुद्धवचन, हमें उन ग्रन्थ-समूहों में मिलते हैं, जिनहें 'त्रिपिटक' (पालि-त्रिपिटक) कहा जाता है।

सम्पूर्ण त्रिपिटक पालि भाषा में उपलब्ध है। संस्कृत भाषा में भी बौद्धों ने त्रिपिटक की रचना की थी, परन्तु आज वह प्राप्य है। चीनी और तिब्बती अनुवादों से पता लगता है। त्रिपिटक का अर्थ है तीन पिटारियाँ-तीन महाग्रन्थ समूह, जिनमें बुद्धवचन निबद्ध हैं। कालान्तर में यह संग्रह ही त्रिपिटक की संज्ञा से विभूषित हो गया ये तीन पिटक हैं-सुत्त पिटक (सूत्र पिटक), विनय पिटक और अभिधम्म पिटक (अभिधर्म पिटक)। ये ग्रन्थ समूह ही प्रारम्भिक बुद्ध धर्म और दर्शन के जानने के लिए मूलस्रोत हैं। तीन पिटक निम्नलिखित हैं-

1. सुत्त पिटक-

इस पिटक में गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों का पद्य और संवादों के रूप में संग्रह किया गया है। इसमें गद्य संवाद हैं, मुक्तक छन्द हैं। प्राचीन छोटी-छोटी कहानियां, उपमाएं तथा उदाहरण हैं। यह पिटक पांच निकायों में विभक्त है।

(क) **दीर्घ निकाय**-दीर्घ निकाय 34 सुत्तों और 3 वर्गो में विभाजित है। सुत्तों में बौद्ध सिद्धान्तों-जैसे आर्यसत्य, मध्यममार्ग, प्रतीत्य समुत्पाद और निर्वाण की चर्चा अधिक है। कहीं-कहीं वर्ण व्यवस्था, तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति अथवा जाति आदि की उच्चता का मार्मिक खण्डन भी मिलता है। इन सुत्तों में बौद्ध नीति

एवं शील, सदाचार आदि चर्चा भी मिलती है।

(ख) **मज्झिम निकाय**–इसमें 152 सुत्त हैं, 15 वर्गों में विभाजित हैं। इन सुत्तों में ब्राह्मण, यज्ञ, होम, योग के विधि स्वरूप, जैनाचार्य के साथ बुद्ध का संवाद, तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति, बौद्ध धर्म के मूल चार आर्य सत्य, रूप, कर्म, पुनर्जन्म, सिद्धान्त, आत्मवाद का खण्डन भी मिलता है। ध्यान की अनेक विधियों आदि का सम्यक विवेचन मिलता है।

(ग) **संयुक्त निकाय**–ऐसे सुत्तों का संग्रह जिसमें दार्शनिक समस्याओं का वर्णन अधिक पाया जाता है। इस निकाय में लगभग आठ हजार सुत्त हैं, किन्तु तीन हजार सुत्त ही प्राप्त होते हैं जो पांच वर्गों में विभक्त हैं।

(घ) **अंगुत्तर निकाय**–इसमें अनेक धर्मों का विवेचन है। इसमें 2300 सुत्त हैं जो 11 वर्गों में विभक्त हैं। इन वर्गों को निपात कहते हैं जो संख्यात्मक श्रेणी से क्रमबद्ध हैं। सभी निपातों में एकरूपता है। इन निपातों में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को संख्या के क्रम से निबद्ध किया गया है।

(ड.) **खुद्धक निकाय**– यह सुत्तपिटक का अन्तिम निकाय है जिसमें 15 ग्रन्थ

संग्रहीत हैं। वे हैं-

1.	खुद्दक पाठ	2.	धम्मपद	3.	उदान
4.	इतिवुत्तक	5.	सुत्त निपात	6.	विमानवत्थु
7.	पेतवत्थु	8.	थेरगाथा	9.	थेरीगाथा
10.	जातक	11.	निद्देस	12.	पटिसम्भिदामग्ग
13.	अपादान	14.	बुद्धवंस	15.	चरियापिटक

कभी कभी 'निद्देस' को चूल निद्देस और महानिद्देस दो पृथक ग्रन्थ मानकर 16 ग्रन्थों की गणना की जाती है।

2. विनयपिटक-

विनय पिटक में विनय-सम्बन्धी नियमों का संग्रह किया गया है। इसे बौद्ध-भिक्षुकों का 'आचार-शास्त्र' भी कहा जा सकता है। इस महाग्रन्थ में भिक्षु-भिक्षुणियों के दैनिक कार्यकलापों से सम्बन्धित नियमों के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें भगवान ने समय समय पर संघ संचालन को नियमित करने के लिए निर्देशों के रूप में दिया था। ये नियम तथा शिक्षाएं भगवान के समय में ही बन चुकी थी। ये नियम सं0 227 हैं जो अनेक रूपों में बारम्बार बतलाए गए हैं। इन नियमों को विषयवस्तु की दृष्टि से तीन भागों अथवा ग्रन्थों में

विभाजित किया गया है जो हैं-

1. सुत्त विभंग-पाराजिक, पाचित्य।

2. खन्धक-महावग्ग, चुल्लवग्ग।

3. परिवार।

3. अभिधम्म पिटक:

'अभिधम्म' का अर्थ है-विशिष्ट धर्म या अतिरेक धम्म। यह बौद्ध धर्म का दार्शनिक पिटक है यद्यपि इसकी विषयवस्तु सुत्तपिटक से पर्याप्त साम्य रखती है, फिर भी 'अभिधम्मपिटक' की विषय को प्रस्तुत करने की अपनी शैली है। यह पिटक सात ग्रन्थों में मिलता है।

1. **धम्म संगणि**-इसमें विशेष रूप से चित्तचैतसिक (चित्तवृत्तियों) तथा अव्याकृत धर्मो का विश्लेषण किया जाता है।

2. **विभंग**-इसमें भी चित्तवृत्तियों तथा बौद्ध शब्दावली का वर्णन पाया जाता है।

3. **धातुकथा**-इसमें विभंग के अठारह विभागों में से केवल तीन भाग-स्कन्ध, आयतन एवं धातु का ग्रहण किया जाता है।

4. **पुग्गलपञ्जति**-पुग्गलपञ्जति में नैतिक दृष्टि से विकास को प्राप्त होने

वाले बौद्ध भिक्षुओं का वर्णन किया गया है तथा कई पुदगल भेद बतलाए गए हैं।

5. **कथावस्तु**–इसमें अष्टादश निकायों के विभिन्न मतों का खण्डन कर स्थविरवाद की स्थापना की गई है।

6. **यमक**–इसमें युगल रूप में बौद्ध सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

7. **पट्ठान**–पट्ठान में 24 प्रत्ययों की दृष्टि से प्रतीत्य समुत्पाद का वर्णन किया गया है।

अनुपिटक साहित्य–

इसके अतिरिक्त अनुपिटक साहित्य भी मिलता है जो बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए त्रिपिटक के बाद रचा गया है। अनुपिटक साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है–

(क) **पूर्वबुद्धघोष–युगीन साहित्य**–इसमें 1. नेत्तिपकरण 2. पेटकोपदेश 3. मिलिन्दप्रश्न और 4. दीपवंश आदि सम्मिलित है।

(ख) **बुद्धघोष–युग का साहित्य**–बुद्धघोष युगीन साहित्य में 1. बु द्धघोष की सर्वोत्कृष्ट रचना 2. विसुद्धिमग्ग और उसकी अट्ठकथाएं, जो पिटकों पर लिखी गयी हैं, आ जाती हैं, 3. आचार्य बुद्धदत्त और धर्मपाल की अट्ठकथाएं इसी युग में लंका में 1. महावंश 2. कच्चायन व्याकरण एवं

आचार्य अनिरूद्ध का प्रसिद्ध ग्रन्थ 3. अभिधम्मत्थ संगहों आदि रचनाएं भी लिखी मिलती हैं।

(ग) **बुद्धघोष परवर्ती साहित्य**–इसमें अट्ठकथा साहित्य पर टीकाएं, अनुटीकाएं चूलवंश, सासनवंश आदि ग्रन्थों की गणना की जाती है।

2. बौद्ध संस्कृत साहित्य–

बौद्ध धर्म सम्बन्धी साहित्य केवल पालि भाषा में नहीं मिलता, संस्कृत, तिब्बती, चीनी आदि भाषाओं में मिलता है। पालि के समान ही संस्कृत में तीन पिटक थे, परन्तु दुर्भाग्यवश वे सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हैं। चीनी और तिब्बती अनुवादों से उनके अस्तित्व का ज्ञान होता है। संस्कृत में पालि निकायों के समान आगम थे जो **दीर्घागम, मध्यमागम** आदि नामों से प्रसिद्ध थे। पालि अभिधम्मपिटक के समान ही संस्कृत में भी सात ग्रन्थ उपलब्ध थे, जिनका उल्लेख बौद्ध संस्कृत साहित्य में मिलता है। कुछ ऐसा साहित्य भी प्राप्त होता है जिसमें हीनयान और महायान दोनों के सिद्धान्त मिलते हैं, ये ग्रन्थ संस्कृत और मिश्रित संस्कृत में लिखे हुए हैं–जिनका नामोल्लेख निम्नवत् है–

1. अभिधर्मकोश, भाष्य एवं व्याख्या।
2. अभिधर्म सार।
3. अभिधर्मामृत।

4. अभिधर्मदीप।

5. महावस्तु अथवा महावस्तु अवदान।

6. ललित विस्तर।

7. सन्दर्भ पुण्डरीक सूत्र।

8. अष्ट साहस्रिका प्रज्ञापारमिता।

9. अवदान शतक।

10. दिव्यादान।

11. निदान।

12. कल्पना मण्डितिका (कुमारलात)

13. चतु:शतक स्त्रोत्र।

14. मैत्रेय व्याकरण।

15. जातकमाला।

16. बुद्धचरित।

17. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि

18. शिक्षा समुच्चय

19. बोधिचर्यावतार

20. माध्यमिक शास्त्र

21. कर्मशतक

22. अवदान कल्पलता (क्षेमेन्द्रकृत) आदि

उक्त में से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का परिचय संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित है-

अभिधर्मकोश-

अभिधर्मकोश आचार्य वसुबन्धु की रचना है। यह बौद्ध धर्म का प्रख्यात एवं उपयोगी ग्रन्थ है। अधिधर्मकोश में वसुबन्धु ने बिना किसी भेदभाव के सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक दोनों ही मतों को सरल एवं सुबोध शैली में प्रतिपादित किया है। इसमें नौ कोशस्थल हैं जो विषयक्रम में इस प्रकार हैं- धातु, इन्द्रिय, लोक, कर्म, अनुरूप, आर्यपुदगल, ज्ञान, ध्यान और पुदगलवाद।

अभिधर्मसार-

अधिधर्मकोश के पूर्व धर्मश्री आचार्य कृत अभिधर्मसार प्राप्त होती है जिस पर मदन्त धर्मत्रात ने अपना विस्तृत संस्करण लिखा था और जिस पर आचार्य वसुबन्धु ने व्याख्या लिखी थी। 'अभिधर्मसार' वैषिकी के मुख्य ग्रन्थों में से एक है।

अभिधर्मामृत-

यह रचना वर्तमान में चीनी भाषा से संस्कृत में लिखी गयी है। वस्तुतः यह रचना संस्कृत में लिखी गयी थी, इसके लेखक आचार्य घोषक माने जाते हैं।

महावस्तु या महावस्तु अवदान-

यह ग्रन्थ हीनयान और महायान के मध्य एक सेतु है। यह महासांधिक लोकोत्तरवादियों का विनयग्रन्थ है। महावस्तु में पाली महावग्ग की तरह बुद्ध की जीवनी और संघ स्थापना का वर्णन प्राप्त होता है। महावस्तु के प्रारम्भ में ही बोधिसत्वों की चार चर्याओं का वर्णन मिलता है, जिसे पूर्ण करना बोधिसत्व के लिए बुद्धत्व प्राप्त करने हेतु अनिवार्य कहा गया है। महावस्तु में भगवान को लोकोत्तर कहा गया है। महावस्तु भक्ति प्राधान्य ग्रन्थ है, इसका मुख्य उद्देश्य बुद्ध के जीवन चरित को प्रस्तुत करना है।

ललित विस्तर-

ललित विस्तर महायान में अन्यतम श्रद्धा से पूज्य है, संभवतः यह ग्रन्थ पूर्व में सर्वास्तिवाद निकाय का ग्रन्थ रहा है। ललित विस्तर नव वैपुल्यों में से एक है। यह ग्रन्थ गद्य-पद्यमय है तथा गद्य के बीच-बीच में गाथाएं दी गयी हैं जो ग्रम्यगीत प्रस्तुत करती हैं तथा सुत्त निपात की तरह अतिप्राचीन हैं। भगवान बुद्ध ने पृथ्वी पर जो लीला की थी इसमें उसका वर्णन होने से इसे 'ललित विस्तर' कहते हैं। ग्रन्थ में बुद्ध का जन्म, असित ऋषि की कथा, बिम्बसारोंपसंक्रमण एवं 'मार-परिसंवाद' तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन आदि अंश बौद्ध निकायों से मिलने के कारण इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। इसके अतिरिक्त

कुछ नवीन अंश महायान मत को व्यक्त करते हैं। विशेषत: यह ग्रन्थ महायान का ग्रन्थ होते हुए भी हीनयान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

बुद्धचरित–

आचार्य अश्वघोष ने इस ग्रन्थ की रचना की थी । यह ग्रन्थ सर्वास्तिवादी सिद्धान्तों तथा महायानी भक्ति भावना से ओतप्रोत है। हम कह सकते हैं कि आचार्य अश्वघोष सर्वास्तिवादी होते हुए भी महायान के प्रभाव से बच न सका, उस समय महायान का प्रभुत्व विस्तृत हो रहा था, फिर भी हीनयान महायान के साथ चल रहा था।[1]

उल्लेखनीय है कि **'मंजूश्रीमूलकल्प'** रचना को छोड़कर एक भी बौद्ध ग्रन्थ भारत की सीमा के अन्दर प्राप्त नहीं हुआ। आज हम जिस बौद्ध साहित्य का अध्ययन करते हैं वह हमें भारत के बाहर, लंका, बर्मा, नेपाल, तिब्बत के चैत्यों एवं विहारों तथा स्वस्याम से प्राप्त हुआ है। चीन और तिब्बत से प्राप्त सूचियों में उल्लिखित ग्रन्थों से हमें विशाल एवं समृद्ध बौद्ध साहित्य के विस्तार के दर्शन होते हैं।

---

1 बुद्धिस्ट रेकार्ड आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ 225-बील

सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता

किसी भी शोध प्रबन्ध में सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की परम आवश्यकता होती है। सम्बद्ध साहित्य से हमें शोध की वस्तुस्थिति का बोध होता है। वस्तुतः सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन के बिना शोधकार्य न केवल अधूरा रहता है अपितु शोध कार्य सही परिणाम नहीं प्राप्त करता है। सम्बद्ध साहित्य शोधकार्य के विषय ज्ञान की संपुष्टि करता है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से जहाँ एक ओर शोधकार्य में नवीन तथ्यों का अनुसंधान होता है वहीं स्थापित तथ्यों की प्रमाण सहित पुष्टि होती है। सम्बद्ध साहित्य शोधकार्य में नवीनता के साथ प्रचीनता का समन्वय स्थापित करता है वहीं मौलिकता को जन्म देता है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी सर्वथा संतुष्ट होकर शोधकार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करता है। सम्बद्ध साहित्य की शोधकार्य में महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका होती है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी शोधकार्य के गुण-दोषों पर विचार करते हुए अन्वेषण कर उसका निष्कर्ष निर्धारित करता है, सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन करने पर शोधार्थी का लक्ष्य शोधकार्य को युगीन प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में देखने का रहता है साथ ही स्वतन्त्र रूप से मूल्यांकन करता है, देश और काल के महत्वपूर्ण आयामों में से जहाँ शोधार्थी देश या स्थान को दृष्टिगत रखते हुए उसके स्थिर या शाश्वत तत्वों के अनुसंधानों पर बल देता है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी

कालक्रम और युगीन संदर्भ को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए परिवर्तनशील तत्वों के विश्लेषण में प्रवृत्त होता है। शोधार्थी व्यक्ति विशेष या काल विशेष तथा कृतिविशेष का मूल्यांकन पूर्ण रूप से कर सकता है तथा व्यक्ति और कृति को सदा पूर्व-परम्परा और युगीन वातावरण के संदर्भ में रखकर ही उसके योगदान को स्पष्ट करता है। सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन शोधार्थी के लिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं रचनाओं का चयन भी पर्याप्त सिद्ध हो सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन से शोधार्थी जहाँ अतीत के सर्जन-कार्य को विभिन्न परम्पराओं और धाराओं के रूप में ग्रहण करते हुए युग विशेष के सन्दर्भ में उनका विश्लेषण करता है वहीं शोधार्थी किन्हीं स्थापित मूल्यों के आधार पर या नए मूल्यों की स्थापना के आधार पर या नये मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से विभिन्न कृतियों के मूल्यपरक तत्वों का उद्घाटन करता है। अतएव सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन शोधकार्य के लिए न केवल परमावश्यक है अपितु अत्यन्त उपयोगी है।

समस्या से शोध प्रबन्धों का विवरण

किसी शोधकार्य को सुचारू रूप से प्रारम्भ करने के लिए यह परमावश्यक है कि शोधार्थी को उस शोधकार्य की पृष्ठभूमि का व्यापक ज्ञान हो, इसके लिए समस्या से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों का अवलोकन करना चाहिए, जिससे शोधार्थी यह ज्ञात करता है कि सम्बन्धित विषय पर क्या-क्या कार्य किए जा चुके हैं तथा क्या-क्या निष्कर्ष निकाले जा चुके हैं। शोधकार्य में कौन-कौन सी विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग किया गया है। स्पष्ट है कि सम्बन्धित शोधकार्यो के पुनरावलोकन से शोधार्थी तकनीकी दृष्टि से अपने शोधकार्यो को करने में समर्थ एवं सक्षम हो जाता है। शोधार्थी ने शिक्षा-दर्शन से सम्बन्धित अनेक शोध प्रबन्धों एवं ग्रन्थों का अध्ययन अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया है। विगत वर्षो में शिक्षा दर्शन के क्षेत्र मे शोध कर्ताओं ने अपने शोध प्रबन्ध विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत किये हैं।

सन् 1944 ई0 से 1983 ई0 तक शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में 67 शोधकार्य किये गये। इनमें 1944 ई0 से 1972 ई0 के मध्य 28, सन् 1973 ई0 से 1975 ई0 के मध्य 7 तथा 1976 ई0 से 1983 ई0 के मध्य 32 शोधकार्य हुए। 1944 ई0 से 1972 ई के मध्य तीन शोधकार्य विदेशी विद्वानों की कृतियों एवं विचारों पर किए गए। मैथ्यू महोदय ने 1944 ई0 में फ्रायड, एडलर एवं जंग के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। गोविन्द राव महोदय ने

1955 ई0 में दस अंग्रेजी उपन्यासकारों की कृतियों में विद्यमान शैक्षिक तत्वों का विश्लेषण किया। सन् 1969 ई0 में सिंह महोदय ने बट्रेण्ड रसेल के शिक्षा दर्शन का सम्यक विवेचन किया। सन् 1944 ई0 से 1975ई0 के मध्य 19 शोध ऐसे हुए जो मूल रूप से आधुनिक विचारकों से सम्बन्धित थे, जिनमें गांधी प्रमुख रहे। सन् 1956 ई0 में नायक महोदय ने गांधी के बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त तथा व्यवहार का अध्ययन किया जबकि सुब्रमण्यम महोदय ने 1958 ई0 में गांधी की विचारों की तुलना टैगोर के विचारों से की। सन् 1970 में राबिन्सन महोदय ने विशेषकर बेसिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा में व्यवहारिकता वाद का आलोचनात्मक अध्ययन किया और बेसिक शिक्षा तथा व्यावहारिकतावाद में समान तत्वों को खोजा। सन् 1973 ई0 में भट्ट महोदय ने तथा 1974ई0 में सिंह महोदय ने भावे के शैक्षिक विचारों को अपने अध्ययन का विषय बनाया, भट्ट महोदय ने यह दिखाया कि भावे तथा गांधी के दर्शन में पर्याप्त साम्य है किन्तु गांधी का दर्शन देश की आजादी से जुड़ा है, जबकि भावे दर्शन सामाजिक संरचना से युक्त है। सन् 1973 ई0 से 1983 ई0 के मध्य जो 39 शोध अध्ययन किए गए उनमें प्राचीन शिक्षा-दर्शन की अधिकता रही किन्तु जो आुधनिक शिक्षा दर्शन पर शोध कार्य हुए उनमें स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दार्शनिक विचारों को प्रमुख रूप से शोधकर्ताओं को आकर्षित किया।

सन् 1973 ई0 में मोसेन महोदय ने अपने शोध प्रबन्धों-**''स्वामी**

विवेकानन्द फिलासफी एण्ड एजूकेशन-ए साइकोन्मेटा-फिजिकल एप्रोच'' में विवेकानन्द के शैक्षिक, मनौवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन का विश्लेषण किया है। सन् 1980 ई0 में नायर महोदय ने अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु स्वामी विवेकानन्द को ही बनाया। सन् 1983 में राखी महोदय ने अपने शोध प्रबन्ध **'एजूकेशलन फिलासफी आफ लोकमान्य तिलक एण्ड स्वामी विवेकानन्द, ए कम्परेटिव स्टडी'** में तिलक एवं विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्यन में नायर महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि **''शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का प्रस्फुटन ही है।''**

इसी प्रकार सन् 1978 ई0 में फुदियथ तथा 1981 में चौहान महोदय ने स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन को अपने शोध अध्ययन का विषय चुना। सन् 1981 में दत्त महोदय ने अपने शोध प्रबन्ध **''ए स्टडी आफ दि फिलासफी आफ विवेकानन्द विद रिफरेंस टू अद्वैत वेदान्त एण्ड ग्रेट यूनिवर्सल हार्ट आफ बुद्ध''** में प्रमुखतः विवेकानन्द के विचारों पर अध्ययन किया है। शोधकर्ता ने यह दर्शाया है कि विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन में वेदान्त दर्शन तथा बौद्ध शिक्षा दर्शन दोनों का प्रभाव है। सन् 1981 ई0 में टैगोर तथा रूसो के **'शिक्षा में प्रकृतिवाद'** का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

उपरोक्त शोधकार्यो के अतिरिक्त बड़ी संख्या में प्राचीन भारतीय शिक्षा

दर्शन पर भी कार्य हुए हैं। सन् 1971 ई0 चार्बू महोदय ने भगवतगीता के शिक्षा दर्शन पर अध्ययन किया तथा निष्कर्ष दिया कि केवल ज्ञान के द्वारा ही नहीं, अपितु क्रिया के द्वारा भी सीखा जा सकता है। सन् 1955ई0 में देशपाण्डे महोदय ने जैन शिक्षा प्रणाली पर शोधकार्य किया है, श्री देशपाण्डे ने शिक्षा के विकास, शिक्षा विधियों, परीक्षाओं तथा अन्य पहलुओं पर प्रकाश डाला है। सन 1954 में सरन महोदय ने अपने शोध कार्य द्वारा गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का विश्लेषण कर संशोधित रूप में भारत में पुनः लागू करने की संभाव्यता का उद्घाटन किया है। सन् 1980 में प्रकाशित शोधकार्य में दुबे महोदय ने उपनिषदिक शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डाला है तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को उपनिषदिक शिक्षा के आलोक में सुधारने का सुझाव दिया है।

सन् 1978ई0 में प्रकाशित शंकर के शिक्षा दर्शन पर शोधकार्य में श्री बी0डी0 शर्मा ने शंकराचार्य के मौलिक ग्रन्थों, शंकराचार्य पर लिखे गये अन्य लेखकों के ग्रन्थों से सम्बन्धित जनरलों के आधार पर श्री शर्मा जी ने निम्न निष्कर्ष निकाले–[1]

1. जगद्गुरू शंकराचार्य केवल एक धार्मिक नेता तथा दार्शनिक ही नहीं थे, अपितु महान शिक्षाविद् थे।

---

1 सेकेण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकूशन, सोसायटी फार एजूकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट, बड़ौदा, पृष्ठ 35, 1979–एम0बी0 बुच

2. शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिक एवं धार्मिक शिक्षा को बीजरूप में स्वीकार करना चाहिए।

3. गुरू-वचन-भ्रमण, वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधियों को शंकराचार्य ने शिक्षा-विधि क रूप में स्वीकार किया है।

4. शिक्षा एक सतत् आध्यात्मिक प्रक्रिया है और तब तक चलती रहती है जब तक "मुक्ति" प्राप्त नहीं हो जाती।

5. "मुक्ति" आत्मज्ञान से प्राप्त होती है।

6. "मुक्ति" शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

सन् 1983 में सिंह महोदय ने प्रकाशित अपने शोध कार्य **"गुरूकुल एजुकेशन एण्ड इट्स यूटिलिटी इन माडर्न एज"** में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले-[1]

1. गुरूकुलों की शिक्षा चरित्र निर्माण, नैतिकता एवं धर्म पर बल देती है और इन्हें आज भी स्वीकार करने की आवश्यकता है।

2. गुरूकुलों में अनुशासन बनाए रखने के लिए बल दिया जाता है। वर्तमान समय में भी छात्रों एवं अध्यापकों का अनुशासित होना अनिवार्य है।

3. गुरूकुल में शिक्षक सम्यक रूप से समर्पित होते थे। आधुनिक शिक्षा

---

[1] गुरूकुल एजूकेशन एण्ड इट्स यूटिलिटि इन मार्डन एज अवध वि0वि0 में प्रस्तुत शोध 1983, आर0आर0 सिंह

की प्रगति के लिए ऐसा होना परमावश्यक है।

4. गुरूकुलों में व्यायाम के माध्यम से शारीरिक विकास तथा साहित्य, दर्शन एवं धार्मिक नियमों के माध्यम से आध्यात्मिक विकास किया जाता था।

5. गुरूकुलों का दर्शन मुख्य रूप से विश्वकल्याण एवं सर्वहित के लिए था।

6. आधुनिक मानवता एवं भौतिकता के साथ इसे अपनाया जा सकता है।

7. गुरूकुलों का प्रबन्ध स्वयं आचार्य ही करते थे। आज की शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक प्रशासन में शिक्षकों की भागीदारी होने चाहिए।

सन् 1951 ई0 में प्रकाशित श्री गोखले ने अपने शोध प्रबन्ध **''बुद्धिस्ट एजूकेशन इन इंडिया एण्ड एब्राड''** में बौद्ध शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।[1] शोधकर्ता का उद्देश्य बौद्ध शिक्षा के मूल तथा विकास का पता लगाना था। प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता ने 67 पाली, 9 संस्कृत, 2 तिब्बती, तथा 2 अर्द्ध मागधी पुस्तकों का प्रयोग किया है, कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। इन ग्रन्थों में 24 अन्य ग्रन्थ, 2 शब्दकोश, 25 जनरल्स एवं 115 सामान्य कोटि के ग्रन्थ हैं। शोधकर्ता ने अपने शोधकार्य में बौद्ध धर्म के विकास में लिखा है कि आरम्भ में बौद्ध धर्म एक उपासक धर्म था। सम्राट

---

1 सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन सेन्टर आफ एडवान्स्ड स्टडी इन एजूकेशन, एम0एस0 यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा, पृ0 34, 35, 1974-एम0बी0ग्रुप

अशोक, कनिष्क और हर्ष ने इस धर्म को संरक्षण प्रदान किया। नागार्जुन, दिड.नाग एवं वसुबन्धु जैसे सुप्रसिद्ध विद्वानों एंव दार्शनिकों ने अपने विचारों से इसे महत्वपूर्ण दर्शन दिया। इन दार्शनिकों के महत्वपूर्ण योगदान से बौद्ध धर्म बौद्ध दर्शन बन गया। बौद्ध धर्म ने गांधार, अमरावती, मथुरा, साम्ब्री तथा आदि कलाकेन्द्रों के माध्यम से एक नवीन कला शैली को जन्म दिया तथा तक्षशिला, वल्लभी, विक्रमशिला, ओदंतपुर तथा नालन्दा शैली को जन्म दिया। अल्प समय में ही बौद्ध धर्म ने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर विश्वधर्म बन गया। गोखले महोदय ने लिखा है कि बौद्ध धर्म ने ब्राम्हणधर्म को प्रभावित किया तथा स्वयं भी ब्राम्हण धर्म से प्रभावित हुआ। बौद्ध धर्म का उदय इतिहास की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति कर यह धर्म लुप्त हो गया और धर्म के विकास की संक्षिप्त कथा कहने के बाद गोखले महोदय ने बुद्ध के चार आर्य सत्यों तथा अष्टांगिक मार्ग का भी उल्लेख किया है तथा विहारों तथा संघों द्वारा शिक्षा-व्यवस्था दिए जाने का उल्लेख किया। आचार्य शिष्य सम्बंधी तथा भिक्षु-भिक्षुणियों तथा स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी अपने विचार शोधकार्य में प्रकट किए हैं। **गोखले महोदय** ने अपने शोध प्रबन्ध में बौद्ध शिक्षा प्रणाली की विवेचना करते हुए बौद्ध शिक्षा प्रणाली की सराहना की।

श्री एम0सी0 मिश्र ने सन् 1982 ई0 में प्रकाशित अपने शोध प्रबन्ध में **'जातक कालीन शिक्षा का स्वरूप'** में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति को

जातक कथाओं के संदर्भ में उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है।[1] श्री मिश्र ने अपने शोधकार्य में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करते हुए जातक कथाओं को प्रमुख स्रोत के रूप में अपनाया, कहीं-कहीं प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का सहारा भी लिया है।

कु0 किश्वर जबीं नसरीन ने 1978 ई0 में अपने शोधकार्य "अश्वघोष की कृतियों में चित्रित भारतीय संस्कृति : एक अध्ययन" में बौद्ध दर्शन का संदर्भानुसार तथा बौद्ध दर्शन के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाला है।[2] यद्यपि लेखिका का उद्देश्य अश्वघोष है न कि बौद्ध दर्शन। लेखिका ने चार सत्यों, प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद आदि तत्वों पर अति संक्षेप रूप से प्रकाश डाला है। लेखिका ने अपने शोध कार्य में बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करते हुए अश्वघोष एवं उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति को प्रमुखता दी। ,

इस प्रकार बौद्ध धर्म तथा बौद्ध दर्शन पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं परन्तु आज भी बौद्ध शिक्षा दर्शन अपनी गूढ़ता के कारण शोध का विषय बना हुआ है, समाज उपयोगी शिक्षा एवं दर्शन से बौद्ध शिक्षा दर्शन उल्लेखनीय प्रगति एवं परिवर्तन ला सकता है अतएव प्रस्तुत शोध इसी प्रकार की प्रगति एवं परिवर्तन की दिशा निर्धारित करने का प्रयास है।

---

1 थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन NCERT पृ0 82, एम0सी0 बुच

2 अश्वघोष की कृतियों में चित्रित भारतीय संस्कृति एक अध्ययन, इला0वि0वि0 में संस्कृत में प्रस्तुत शोध ग्रन्थ, 1976, कु0 किश्वर जबीं नसरीन

सम्बद्ध साहित्य की विवेचना एवं वर्तमान शोध से तुलना

बौद्ध दर्शन पर लिखा गया साहित्य हमें प्रमुखत: तत्कालीन जनभाषा पालि में प्राप्त होता है, संस्कत, चीनी तथा तिब्बती भाषा में भी बौद्ध दर्शन पर लिखित साहित्य प्राप्त होता है, मूलत: पालि भाषा में रचा गया साहित्य ही प्रमुख है। बौद्ध दर्शन पर जो भी साहित्य लिखा गया है उसमें भगवान बुद्ध, उनकी उपदेशना, नियम आचार-विचार, तथा धर्म के प्रचार-प्रसार का उल्लेख करते हुए तत्कालीन समाज का चित्रण किया गया। वस्तुत: कोई भी साहित्य तत्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्वों से प्रेरित तथा प्रभावित होता है। बौद्ध साहित्य ने अपने दर्शन में तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थिति को भली-भांति उकेरा है। बौद्ध साहित्य हमें पर्याप्त रूप से बौद्ध कालीन शिक्षा, विस्तार तथा संस्कृति का ज्ञान कराता है, बौद्ध साहित्य में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, बौद्ध उपदेश को प्रदत्त शिक्षा में पारंगत होना परमावश्यक माना जाता था, शिक्षा में पारंगत होने के बाद उपदेशक बनने की प्राय: अनुमति थी, वस्तुत: बौद्ध दर्शन ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किया था, शिक्षा को व्यावसायिक, सोद्देश्यपरक एवं समाजोपयोगी बनाने में विशेष ध्यान आचार्यो द्वारा बौद्ध काल में दिया जाता है। वर्तमान शोध बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में प्रासंगिकता पर आधारित है, वर्तमान शोध की विवेचना बिना बौद्ध साहित्य के

ज्ञान के सम्भव है। बौद्ध साहित्य की मूल भाषा पालि थी। संस्कृत, तिब्बती तथा चीनी भाषा में भी बौद्ध साहित्य के यत्र दर्शन होते हैं। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करना था, किन्तु शारीरिक विकास की उपेक्षा नहीं की गयी थी। उद्देश्य के अनुरूप ही पाठ्यक्रम की स्थापना थी। आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ लौकिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। धर्म तथा दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। छात्र अपना कर्तव्य करते थे तथा आचार्य भी अपने उत्तरदायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते थे।

सम्बद्ध साहित्य के अन्तर्गत बौद्ध कालीन शिक्षा दर्शन से सम्बन्धित साहित्य, कथा, काव्य साहित्य तथा अन्य शोध साहित्य आता है। वस्तुतः सम्बाद्ध साहित्य के अध्ययन के उक्त शोधकार्य अपूर्ण है, प्रस्तुत शोध बौद्ध शिक्षा पर तथा वर्तमान में बौद्ध शिक्षा की प्रासंगिकता पर आधारित है। शोधार्थी द्वारा बौद्ध साहित्य के अध्ययन द्वारा उक्त शोध कार्य करने का प्रयास किया है जिसकी तुलना सागर से बूंद निकालने से की जाती है, सम्बद्ध साहित्य अत्यधिक गहन एवं गूढ़तम तथा बोधात्मक है कि उक्त शोधकार्य तो उसके समक्ष एक अणु भी नहीं है, फिर भी शोधार्थी द्वारा अपने संक्षिप्त अध्ययन एवं प्राप्त ज्ञान के आधार पर सम्बद्ध साहित्य के सापेक्ष शोध कार्य करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य में प्राप्त सम्बद्ध साहित्य यथा बौद्ध शिक्षा दर्शन कथा, काव्य एवं इस सम्बन्ध में किए गए अन्य शोध कार्यो की विवेचना कर शोधकार्य को सार्थक करने का प्रयास किया जा रहा है, वस्तुतः वर्तमान परिवेश में बौद्ध शिक्षा दर्शन, बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली के आधार पर शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त संशोधन की महती आवश्यकता है, इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध कार्य करने का प्रयास किया जा रहा है। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली इतनी अधिक समृद्ध तथा निष्पक्ष तथा सोद्देश्यपरक है, वह वर्तमान की शिक्षा प्रणाली में व्याप्त कुव्यवस्थाओं का अंत करने में सक्षम है। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से विकसित बौद्ध शिक्षा इस दृष्टि से आदर्श मानी जा सकती है, वर्तमान में व्याप्त शिक्षा के जिस परिवर्तन की महती आवश्यकता मानी जाती है वह परिवर्तन लाने में बौद्ध शिक्षा मार्गदर्शन कर सकती है। बौद्ध शिक्षा में वह सभी विशेषताएं विद्यमान है, जिनकी वर्तमान में में अपेक्षा है, अतएव सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन प्रस्तुत शोधकार्य में परमावश्यक है। सम्बद्ध साहित्य का प्रस्तुत शोधकार्य में महत्वपूर्ण स्थान है तथा प्रस्तुत शोधकार्य की सम्बद्ध साहित्य से तुलना का प्रयास भी सूर्य के प्रकाश की मोमबत्ती के प्रकाश से तुलना करने जैसा ही है। सम्बद्ध साहित्य में व्याप्त बोधात्मक तथ्यात्मक तथा विचारात्मक शैली से प्राप्त ज्ञानार्जन द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है।

ऐतिहासिक साधनों से मूल्यांकन

इतिहास वर्तमान में भूत को जानकर या बोध कर वर्तमान को जानने का उत्तम साधन है, दूसरे शब्दों में इतिहास भूत को समझ कर समझाने का कार्य करता है। ''समझने'' तथा ''समझाने'' की दोनों प्रक्रियाएं जटिल प्रक्रियाएं हैं। समझने की प्रक्रिया के दो नितान्त भिन्न संघटक होते हैं- समझने का यत्न करने वाला व्यक्ति तथा वह परिस्थिति जिसे समझने का यत्न किया जा रहा है। समझने वाला हर हालत में एक परिपक्व व्यक्ति होता है जिसके मन में कुछ निश्चित पूर्व धारणाएं स्थापित हो चुकी होती हैं। ये पूर्व धारणाएं आंशिक रूप से उसकी स्वभावगत मनोवृत्ति का परिणाम होती है आंशिक रूप से उसकी अपनी परिस्थितियों की। इस पूर्व धारणाओं द्वारा उस ऐतिहासिक माडल का निर्माण होता है जिसके आधार पर विगत को समझने-समझाने का कार्य होता है। प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के लिए एक माडल आवश्यक है, चाहे वह उसके चेतन मन में हो, चाहे अवचेतन मन में। यदि अलग-अलग इतिहासकारों के मन में भिन्न-भिन्न माडल न रहे तो ऐतिहासिक अर्थ निर्णयों या व्याख्याओं में कोई विविधता भी न होती। ऐतिहासिक शोध प्रणाली का प्रयोजन आत्मनिष्ठा को न्यूनतम करना होता है।

प्रत्येक परिस्थिति के अध्ययन के उपयुक्त माडल का होना परमावश्यक

है जो परिस्थिति को प्रतिबिम्बित करे, इतिहासकार के पूर्वाग्रहों को नहीं। भारतीय दार्शनिकों में विलक्षण और अद्वितीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ध्यान दिया, जिसने भारतीय चिन्तन को उसका अनोखापन दिया और न एक ऐसा ऐतिहासिक माडल विकसित करने का प्रयत्न किया जो भारतीय मानस को सच्चे अर्थों में प्रतिबिम्बित करता है।

बौद्ध दर्शन का प्रमुख आधार त्रिपिटक है, जबकि विद्वानों का एक वर्ग पालि त्रिपिटक को बुद्ध के अपने विचारों का दर्शन नहीं मानता। इन विद्वानों में श्रीमती रिसडेविड्स, कर्न, कीथ, राधाकृष्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों का तर्क है–

1. एक भी प्राचीन पालि पाण्डुलिपि भारत में नहीं मिली है। त्रिपिटक का नागरी संस्करण तक बर्मा, स्याम आदि दक्षिण पूर्व एशियाई भाषा मे प्राप्य सामग्री और उसके आधार पर तैयार किए गए रोमन संस्करणों पर आधारित है, भारतीय सामग्री पर नहीं।

2. त्रिपिटक की रचना ही नहीं, उसकी भाषा भी विवाद का विषय है।

3. त्रिपिटक के संकलन की कथा भी संदेह उत्पन्न करती है, कतिपय विद्वानों को इस तथ्य पर संदेह है कि पिटकों की रचना परिनिर्वाण के तुरन्त बाद हुई।

इन तर्कों के आधार पर विद्वान त्रिपिटकों की रचना बहुत बाद की मानते हैं। **कीथ** के अनुसार त्रिपिटक को बुद्ध वचन नहीं मान जा सकता क्योंकि वह बुद्ध के बहुत बाद लिखा गया। त्रिपिटक में प्रतिपादित बौद्ध विचारधारा स्वयं बुद्ध की विचारधारा से एक सीमा तक भिन्न है। श्रीमती रीजडेविड्स का विचार है कि बुद्ध के अपने विचारों में निषेधात्मक तत्व बिल्कुल नहीं थे। दूसरे शब्दों में अनित्य, अनात्म और दुख बुद्ध की नहीं भिक्षुओं की देन है। इसके पीछे श्रीमती रीज डेविड्स की धारणा थी कि बौद्ध धर्म विश्वधर्म था। मनोविज्ञान का आश्रय लेते हुए डॉ0 राधाकृष्णन कहते हैं कि "एक ऐसा दर्शन जो पारमार्थिक आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करे, आत्मा का निषेध करे तथा पवित्र जीवन के फलस्वरूप केवल उच्छेद का मार्ग दिखाए। किसी भी हृदय में अपने संस्थापक के लिए उत्साह तथा शिक्षाओं में श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सकता था। यह मानना कि शुष्क बुद्धिवाद छठी शती ई0पू0 के भारतीय मानस को प्रभावित कर सकता था मनोविज्ञान के हर नियम के अनदेखी करना होगा। यह "शुष्क बुद्धिवाद" त्रिपिटक में इतना महत्वपूर्ण कैसे बन बैठा? पालि त्रिपिटक अपने वर्तमान रूप में बुद्ध के बहुत बाद में आया। उसमें कुछ सामग्री बहुत प्राचीन है और कुछ नवीन। इसलिए यह निश्चित पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि त्रिपिटक में निरूपित बौद्ध मत कितना स्वयं बुद्ध का है और कितना बाद का। लेनिंग्स के अनुसार भी त्रिपिटक में ऐसे विचार घुस आए जिन्हें बुद्ध

कभी भी स्वीकार करते। अन्तर इतना ही है कि जिसे श्रीमती रिजडेविड्स या राधाकृष्णन क्षेपक मानते हैं उन्हें ही जेनिंग्स बुद्ध के मूल विचार मानते हैं उनके अनुसार नैरात्म्य ही बुद्ध का मौलिक संदेश था और कर्म तथा पुनर्जन्म के सम्प्रत्यय क्षेपक के रूप में त्रिपिटक में आ गये थे। यदि श्रीमती रीजडेविड्स अनात्म सम्बन्धी सारे विचारों को त्रिपिटक से बाहर कर देना चाहती थी तथा जैनिंग्स कर्म सम्बन्धी विचारों को। ये सभी प्रयास निश्चित रूप से राधाकृष्णन के इस विश्वास पर आधारित है-"बुद्ध जितना जानते तथा मानते थे अपने शिष्यों को उन्होंने उससे बहुत कम उपदेशित किया और शिष्यों ने जो अपने गुरू से सुना उससे भी कम विश्वास किया। दूसरे शब्दों में बुद्ध के विचारों तथा विश्वासों को और कोई चाहे समझ सकें या न समझ सके, बौद्ध लोग उसे बिल्कुल नहीं समझ सके। किन्तु इन क्षेपकों के आधार पर त्रिपिटकों को बाद का स्वीकार करना उचित है। क्योंकि स्वयं श्रीमती रीजडेविड्स अपने मत में अन्तर्विशेष का शिकार हैं वहीं डेविड्स, जेनिग्स एव राधाकृष्णन के मतों में भी परस्पर विरोध है। ये विद्वान इस बात पर भी निश्चित नहीं हैं कि त्रिपिटक का कौन सा भाग क्षेपक है और कौन सा अंग बुद्ध का मूल संदेश है। अशोक के शिलालेखों में धम्म, सुत्तिक, तथा पंचनेकायिक जैसे विशेषणों से ज्ञात होता है कि अशोक से पूर्व त्रिपिटक की रचना की जा चुकी थी। विन्टरनिट्स के अनुसार श्रीमती रीज डेविड्स ने जो शोध प्रणाली अपनायी वह

न तो इतिहासकार की थी न ही भाषा वैज्ञानिक की, अपितु वह ऐसी धर्मशास्त्री की भांति कार्य कर रही थी जिसकी अपने पूर्वाग्रहों के लिए विश्वधर्म सम्बन्धी विवाद के लिए प्रमाण एकत्र करने की रूचि हो। विन्टरनित्स ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि त्रिपिटक के संकलनकर्ता बुद्ध के विचारों का मिथ्या निरूपण कर सकते थे अथवा उनके स्थान पर अपना विचार रख सकते थे। अतः पालि त्रिपिटक पूर्ण रूपेण प्राचीन तथा प्रमाणिक हैं तथा यही बौद्ध धर्म दर्शन के आधार भूत ग्रन्थ के रूप में स्वीकार्य है।

श्री टी0आर0वी0 मूर्ति ने भी श्री राधाकृष्णन के विचारों से असहमति प्रकट की। त्रिपिटकों में तरह-तरह के क्षेपकों की कल्पना बिल्कुल भी उचित नहीं है क्योंकि जो विद्वान इतना मौलिक विचारक था, जो अपने निजी विचार विकसित कर बुद्ध विचारों के स्थान पर प्रतिस्थापित कर सकता हो, वह इतना मूर्ख नहीं हो सकता कि वह अपने निजी विचार दूसरे के मत में प्रतिस्थापित करे, वह एक नवीन मत अवश्य ही उद्भव कर सकता है। जहाँ तक क्षेपकों का प्रश्न है इस सम्बन्ध में यह भी सम्भव है कि ये विचार बुद्ध के ही थे परन्तु कतिपय कारणोवश विलम्बादि के बाद सम्मिलित किए गए, ये विचार बाद में संकलित किए गए जो पूर्व में इनकी कोई आवश्यकता न मानी गयी, कई धार्मिक गन्थों यथा वेद, बाइबिल, तथा अवेस्ता के विचार भी पूर्व में मौखिक थे, परन्तु बाद में अनुयायियों ने संकलन कर लिपिबद्ध किया है यदि
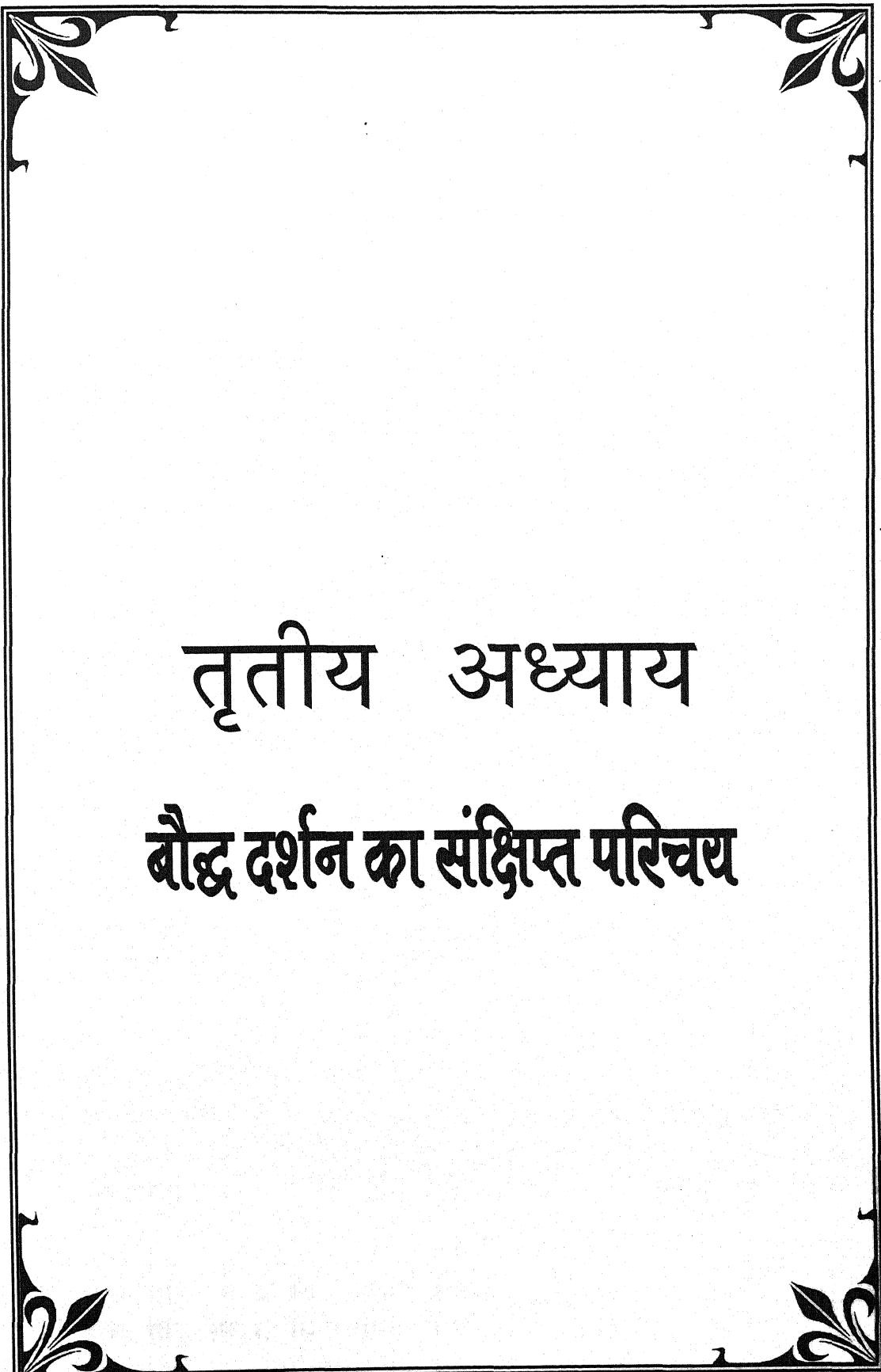
ये सब प्रमाणित माने जा सकते हैं तो त्रिपिटक क्यों नहीं माने जा सकते? त्रिपिटक की प्राचीनता तथा मौलिकता का प्रश्न सर्वथा निराधार है। वस्तुतः यह त्रिपिटक बौद्ध दर्शन का मूलाधार हैं और इनकी बौद्ध धर्म में महत्वपूर्ण उपयोगिता तथा सम्माननीय स्थान है।

'ललित विस्तर' भी एक प्रमाणिक ग्रन्थ है क्योंकि इसके लक्ष्य त्रिपिटक द्वारा प्रकट होते हैं इसे बुद्ध घोष पालिपिटकों के बाद प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। 'मिलिन्दपन्ह' भी एक प्रमाणिक ग्रन्थ है। स्याम में 'मिलिन्दपन्ह' पालिशास्त्र में सम्मिलित किया जाता है। **श्रीमती रीज डेविड्स मिलिन्दपन्ह के लिए कहा–"भारतीय गद्य की अत्युत्कृष्ट कृति है और साहित्यिक दृष्टि से अपनी श्रेणी की सर्वोत्तम पुस्तक है। जैसी आज तक किसी भी देश में नहीं लिखी गयी होगी।"** 'मिलिन्दपन्ह' ग्रन्थ का लंका में सर्वाधिक उपयोग होता है और वहां पर सर्वप्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों की सामग्री भी सपूर्णतया विश्वसनीय है क्योंकि अधिकांशतः ये पिटकों से ली गयी हैं। 'विशुद्धिमग्ग' भी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है, बुद्धघोष प्रथम बौद्ध टीकाकार हैं इसकी 'अत्थसप्लिनी' ग्रन्थ 'धम्म संगणी पर बहुमूल्य टीका प्राप्त होती है।

इसी प्रकार विदेशी यात्रियों तथा ह्वेनसांग, इत्सिंग तथा फाह्यान के यात्रा

वृतान्त तथा विवरण पूर्णतः प्रमाणिक हैं क्योंकि इनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं है इन्होंने जो भी कुछ भी देखा, समझा, अनुभव किया, लिखकर वर्णित किया, ये दरबारी लेखक नहीं हैं। वस्तुतः इनका यात्रा एवं भ्रमण का उद्देश्य खोज तथा अपने ज्ञान की वृद्धि हेतु था, अतः इन्होंने कुछ भी लिखा है, स्वतंत्रतापूर्वक, पूर्वाग्रह रहित निष्पक्षता से लिखा है यही कारण है कि जो जानकारी ह्वेनसांग देता है, लगभग वहीं जानकारी इत्सिंग भी देता है, वे स्वयं एक दूसरे की जानकारी की पुष्टि करते हैं। ह्वेनसांग तथा इत्सिंग के विवरण स्वतः एक दूसरे को प्रमाणित करते हैं, इनमें परस्पर अन्तर्विरोध भी नहीं है, अतः विदेशी यात्रियों के विवरण प्रमाणिक, निष्पक्ष तथा स्वतंत्रतापूर्वक यथास्थिति की पुष्टि करने में सहायक हैं।

****

तृतीय अध्याय

बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय

बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय

दर्शन का शाब्दिक अर्थ संस्कृत भाषा की दृश धातु में ल्युद प्रत्यय युक्त करने से बनता है, जिसको हिन्दी भाषा में 'देखना' कहा जाता है। दर्शन को परिभाषित करना अत्यन्त असाध्य कार्य है क्योंकि जहां एक ओर दर्शन आत्मा, परमात्मा, जगत जैसे गम्भीर विषयों पर चिन्तन करता है, वहीं दूसरी ओर इसको परिभाषित करना तथा तात्पर्य समझना स्वयं ही एक गम्भीर समस्या है। उपनिषदों में सत्य का दर्शन करने के लिए 'दृश' धातु का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः जो ज्ञान चक्षुओं के दृश्यावलोकन से प्राप्त है, वह अधिक विश्वसनीय होता है।[1] 'दर्शन' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण है 'फिलासफी' 'फिलासफी' शब्द 'फिलास' और 'सोफिया' नामक दो शब्दो क संयुक्त होने से निर्मित हुआ है। 'फिलास' का अर्थ है प्रेम या अनुराग तथा 'सोफिया' का अर्थ है विद्या या ज्ञान। इस प्रकार फिलासफी का अर्थ है-'विद्यानुराग' या ज्ञान प्रेम।[2] सामान्यतः दर्शन को ही फिलासफी कह दिया जाता है, परन्तु इन दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। 'दर्शन' शब्द में ज्ञान, कर्म और भाव का बोध होता है। सत्य का साक्षात दर्शन करना ही 'दर्शन' है, जबकि फिलासफी शब्द में गौरव, सात्विकता का बोध नहीं होता, केवल विद्यानुराग स्वयं में एक अधूरा

---

1 शिक्षा दर्शन, पृष्ठ 3, प्रो0 रामशकल पाण्डेय

2 शिक्षा दर्शन, पृष्ठ 3, प्रो0 रामशकल पाण्डेय

भाव रखता है। सत्य का ज्ञान प्राप्त करने हेतु सत्यान्वेषण किया जाता है। भारतीय दार्शनकि जब चिन्तन करता है तो उसका एक स्पष्ट पवित्र लक्ष्य होता है, जबकि पश्चिमी फिलासफर बिना कोई लक्ष्य सुनिश्चित किए हुए विचार प्रारम्भ कर देता है।

'दर्शन' को विभिन्न सुयोग्य दार्शनिकों द्वारा स्वमत से परिभाषित किया है। भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों ने अपने-अपने विचारों से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है-

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के अनुसार-

'इस परिवर्तनशील जगत के परे अपरिवर्तनशील, अलौकिक तथा शाश्वत तत्व विद्यमान है। उसका ज्ञान ही पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान है। अतः इस यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना ही दर्शन है।'

प्लेटो के अत्यधिक प्रिय शिष्य एवं सुयोग्य लब्ध विद्वान अरस्तू के अनुसार-

"दर्शन ऐसा विज्ञान है जो परमतत्व के यथार्थ स्वरूप की जाँच करता है।"

सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं तत्वविज्ञानी काण्ट के अनुसार-

"दर्शनशास्त्र बोध क्रिया का विज्ञान एवं उसकी आलोचना है।"

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार–

"दर्शनशास्त्र विज्ञानों का समन्वय या विश्वव्यापक ज्ञान है।"

हेगेल ने शाश्वत एवं चिरन्तन तत्व का ज्ञान प्राप्त करना दर्शन की मूल प्रयोजन मानते हुए कहा–

"दर्शन शास्त्र यथार्थ का तत्व दर्शन है।"

फिक्टे के अनुसार–

"दर्शनशास्त्र ज्ञान का विज्ञान है।"

ब्रैडले के अनुसार–

"दृश्य जगत की अपेक्षा यथार्थ के ज्ञान का प्रयत्न करना दर्शन है।"

वेबर अल्फ्रेड के अनुसार–

"दर्शनशास्त्र प्रकृति के व्यापक स्वरूप का अन्वेषण है, वस्तुओं के स्वरूप के व्यापक स्पष्टीकरण का प्रयास है।"

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाजशास्त्री कॉम्टे के अनुसार–

"दर्शनशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है।"

हेण्डरसन के अनुसार–

"सृष्टि और इसमें मनुष्य के स्थान के सांगोपांग एवं व्यवस्थित

रूप पर चिन्तन करने एवं इस रूप को व्यक्त करने का प्रयास दर्शनशास्त्र है।''

सुप्रसिद्ध दार्शनिक बरट्रेण्ड रसेल के अनुसार-

''विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों का तार्किक अध्ययन दर्शनशास्त्र है।''

उक्त परिभाषाओं पर विचार करने पर हम पाते हैं कि दर्शनशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएं स्वदृष्टिकोंण पर आधारित है। कतिपय विद्वान दर्शन शास्त्र को अलौकिक तथा चिरन्तन ज्ञान तक ही सीमित करते हैं। एक ओर जहाँ प्लेटो, अरस्तू, ब्रेडले, हेगेल के विचारों में साम्यता प्रदर्शित होती है, वहीं काण्ट एवं फिक्टे ने दर्शनशास्त्र को केवल ज्ञानशास्त्र के रूप में देखा। इन विद्वानों ने आत्मा तथा ईश्वर आदि के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व इस तथ्य पर जोर दिया कि मानव ज्ञान की सीमा कहाँ तक है। ज्ञान एवं अज्ञान में अन्तर ज्ञात करना तथा ज्ञान के लिए प्रमाणों का विवेचन-दर्शन के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत है, किन्तु दर्शन केवल ज्ञानशास्त्र नहीं है। आधुनिक विद्वानों ने दर्शन और विज्ञान के सम्बन्ध पर विशेष रूप से ध्यान दिया और इस सम्बन्ध में विश्लेषण को दर्शन का प्रमुख विषय माना। दर्शन और विज्ञान में सम्बन्ध तो है, किन्तु दर्शन मूल्यों को अपना विषय बनाकर विज्ञान से कहीं आगे विस्तृत है, अतएव उपरोक्त समस्त परिभाषाओं में एकांगी प्रतीत होता है। जबकि भारतीय दार्शनिक

दर्शन को व्यापक एवं समग्र रूप से परिभाषित करते हैं। भारतीय दार्शनिक दर्शन को केवल पुस्तकीय ज्ञान न मानकर, गहन चिन्तन का विषय मानता है। सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्री डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन का इस सम्बन्ध में कथन है **"दर्शनशास्त्र यथार्थ के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।"** सुप्रसिद्ध विद्वान सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं वीरेन्द्र मोहन दत्त ने दर्शन को परिभाषित करते हुए लिखा **"युक्तिपूर्वक तत्वज्ञान को प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहते हैं।"**[1] शास्त्र के अन्तर्गत स्थूल और सूक्ष्म दोनों की विवेचना की जाती है। परम तत्व की प्राप्ति हेतु स्थूल और सूक्ष्म दोनों का साक्षात्कार परमावश्यक माना गया है, सम्भवतः इसी लिए स्थूल के लिए चार्वाक, न्याय, वैशेषिक आदि तथा सूक्ष्म के लिए योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों की रचना की गयी। सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रत्येक मनुष्य में 'प्रज्ञाचक्षु' होता है, जिसे **'ज्ञान चक्षु'** भी कहा जाता है। इस प्रज्ञाचक्षु के विकास से ही मनुष्य को सभी सूक्ष्म तत्व साकार प्रतीत होते हैं। दर्शन के लिए हमें दोनों प्रकार के चक्षुओं की अपेक्षा होती है। सूक्ष्म तत्वों को हम सूक्ष्म नेत्रों से तथा स्थूल तत्वों को हम स्थूल नेत्रों से देखते हैं। यही कारण है कि उपनिषदों में 'दृश' धातु का प्रयोग किया गया है और यही भाव भारतीय दर्शन के 'दर्शन' में भी है। बिना चक्षु प्रत्यक्ष के किसी भी तत्व का ज्ञान निश्चित रूप से नहीं हो

---

1 भारतीय दर्शन, पृष्ठ 1, चट्टोपाध्याय एवं दत्त

सकता है।[1] अतएव तत्व के साक्षात्कार को ही दर्शन कहा गया है। इस को सम्यक दर्शन भी कहा जाता है। मनु के अनुसार-"सम्यक दर्शन" प्राप्त करने पर मनुष्य कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता। सम्यक दर्शन से विहीन पुरूष ही संसार के बंधन में पड़ जाते हैं। व्यापक अध्ययन की दृष्टि से दर्शन के तीन विभाग किए गए हैं-

1. **तत्वज्ञान**
2. **ज्ञानशास्त्र**
3. **मूल्यशास्त्र**

तत्वज्ञान के अन्तर्गत आत्मा सम्बन्धी तत्वज्ञान, ईश्वर सम्बन्धी तत्वज्ञान, सृष्टि विज्ञान, सत्ता विज्ञान एवं सृष्टिशास्त्र का अध्ययन किया जाता है।

ज्ञानशास्त्र में ज्ञान का विवेचन किया जाता है, ज्ञानशास्त्र दर्शनशास्त्र का एक महत्वपूर्ण विभाग है। कतिपय विद्वानों ने ज्ञानशास्त्र को ही दर्शनशास्त्र माना है।

मूल्यशास्त्र के अन्तर्गत नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र आदि की विवेचना की जाती है, जो व्यक्ति जीवन के आदर्शों, लक्ष्यों तथा मूल्यों पर प्रकाश डालते हैं।

---

1 भारतीय दर्शन, पृष्ठ 6, डॉ0 उमेश मिश्र

भारत में वर्तमान तक न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वेदान्त दर्शन, जैन दर्शन, वैशेषिक दर्शन, बौद्ध दर्शन तथा चार्वाक दर्शन का विकास हुआ है। न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, योग, सांख्य तथा वेदान्त दर्शन को **'षड्दर्शन'** की संज्ञा दी गयी है। षड्दर्शन वेदों की सत्ता में विश्वास करते हैं, जबकि जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन एवं चार्वाक दर्शन वेदों का खण्डन करते है। इन नौ दर्शनों में परस्पर अद्भुत सम्बन्ध है, सभी दर्शन परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं और प्रत्येक दर्शन में अन्य दर्शनों के प्रति सम्मान, प्रकट किया गया है। तथा अत्यन्त उच्च कोटि की आलोचना प्रस्तुत की गयी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जो भी चिन्तन, मनन हुआ, उसका आधार वेदों का समर्थन या वेदों का खण्डन था, अतएव चिन्तन के केन्द्र बिन्दु वेद ही बने रहे।

बौद्ध दर्शन का उद्भव महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेशों से हुआ। जरा, रोग, मृत्यु की निरन्तरता देखकर राजकुमार सिद्धार्थ द्रवित हो गये थे, और विलासी जीवन की क्षणभंगुरता देखकर दु:खों से छुटकारा पाने का उपाय खोजने लगे। उन्होंने दु:खों से छुटकारा प्राप्ति का उपाय जानने के लिए भोग-विलास का जीवन त्याग कर तपस्या प्रारम्भ कर दी, अन्ततः उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिसे महाबोधि की संज्ञा दी जाती है। बुद्ध स्वयं संसार से विरत होकर शान्ति की खोज में राजसुख का त्याग किया था और सम्बोधि के अनन्तर शोलावतीर्ण

जनता के अवलोकन से करूणार्द्र होकर उन्होंने सम्बोधि में अविगत धर्म की ढेशना का भार अपनाया था। संसार के तट से निर्वाण के तट तक ले जाने वाला उनका धर्म करूणा का एक सेतु था। जीवन के अपरिहार्य दुःख के दर्शन से उनके धर्म का प्रारम्भ होता है। दुःख की प्रवृत्ति समझकर उसकी निवृत्ति के लिए प्रयत्न ही धर्म-चर्चा है, जो कि सम्बोधि में चरमता को प्राप्त होती है और अनुत्तर शान्ति पद ही परमार्थ हैं। इस प्रकार दुःख, समुदाय, निरोध और निरोध गामिनी प्रतिपदा इन चार विभागो में बुद्ध-देशना का विचार अनायास हो सकता है, बुद्ध के ज्ञान का सार आर्य सत्यों में है। बुद्ध ने बताया कि जगत के सभी प्राणियों में एवं सभी दशाओं में दुःख वर्तमान है, और इस दुःख का कारण है जगत की समस्त वस्तुएं परिवर्तनशील हैं, मरण का कारण जन्म है, जन्म का कारण तृष्णा है, तृष्णा का कारण अज्ञान है, इस अज्ञान का अंत ही दुःखों का अंत है। चौथा सत्य दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा है, इन चारों सत्य के अन्तर्गत बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग बनाए हैं, जिनके अनुपालन से समस्त दुःखों से छुटकारा पाया जा सकता है। बुद्ध से सामाजिक-जीवन में दुःखों के मूल को समझकर उसके अंत के लिए अपने विचार प्रस्तुत किए, अतएव बुद्ध दर्शन का मूल स्रोत मानव जीवन में दुःखों का अंत करना था, बौद्ध दर्शन, काल्पनिक जगत की अपेक्षा वास्तविक जगत को प्रमुखता दी, इसी कारण बौद्धिक दर्शन वेदों की प्रमाणिकता पर विश्वास नहीं करता है तथा सामाजिक जीवन में यथार्थता पर बल देता है।

बौद्ध दर्शन की तत्वमीमांसा

भगवान बुद्ध के समस्त उपदेश एवं शिक्षाएं पूर्णतः व्यवहारिक तथा यथार्थता से प्रेरित थी, भगवान ने मानव-जीवन से सम्बन्धित विषयों पर विवेचना की, जबकि अन्य विषयों की विवेचना में अद्रश्रुण्कप से शान्ति का परिचय दिया, परन्तु इसका अर्थ यह निकालना गलत होगा कि उन्होंने दार्शनिक विषयों पर प्रकाश नहीं डाला, महात्मा बुद्ध के उपदेशों, शिक्षाओं, भाषणों एवं वार्तालाप आदि में दार्शनिक विचारों का अद्‌भुत समन्वय का बोध होता है। भगवान का महाभिनिष्क्रमण संसार को दुःखनिवृत्ति हुआ था, अतएव तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति उनके हृदय में क्षोभ एवं घृणा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने अपने सांसारिक सुख के त्याग, चिन्तन एवं मनन को प्राप्त बोधि के आधार पर अनुभव किया कि इस सबका कारण सांसारिक सुख व शान्ति की तृष्णा है और तृष्णा की पूर्ति हेतु मनुष्य मरण, जन्म एवं कर्म के चक्कर में सदा फँसा रहता है। अतः मनुष्य जब तक अपना ध्यान इस ओर हटाने में अग्रसर नहीं होगा, तब तक वह सांसारिक दुःखों से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षा का आधार आचार-विचार था। उन्होंने आचार पर विशेष महत्व दिया, यदि यह कहा जाए कि बुद्ध की सम्पूर्ण देशना एक नैतिक आचार-संहिता थी तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बौद्ध सिद्धान्त तथा व्यवहार की तुलना रोग विज्ञान तथा औषधि विज्ञान से की जा सकती है। ''ललित विस्तर'' में बुद्ध को आध्यात्मिक चिकित्सक कहा भी गया है, जिस प्रकार एक चिकित्सक औषधि देने से पहले रोग विज्ञान की सहायता से रोग का स्वरूप तथा कारण जान लेता है, उसी प्रकार भगवान मुक्ति मार्ग दिखाने में यकीन करते हैं, या संसार नामक रोग का निदान करने में विश्वास करते थे। पहले सिद्धान्तों के रूप में रोग का कारण स्पष्ट कर लेते हैं, सम्पूर्ण बौद्ध चिन्तन का केन्द्र संसार से मुक्ति है, **''चुल्लवुग्ग''** में कहा गया है-

''जिस प्रकार विशाल सागर में एक ही स्वाद होता है-नमक का स्वाद, उसी प्रकार भिक्षुओं, ''धम्म'' में भी एक ही स्वाद व्याप्त है-मुक्ति का स्वाद।''

बौद्ध दर्शन में सिद्धान्त और व्यवहार का अनूठा संगम है, कतिपय विद्वान बौद्ध दर्शन में यह आरोप लगाते हैं कि 'बुद्ध देशना' में तत्व ज्ञान का अभाव है। इस विषय में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम मत बुद्ध ने एक नवीन दर्शनशास्त्र (मेटाफिजिकल सिस्टम) का प्रतिपादन किया, जबकि द्वितीय मतानुसार बुद्ध ने दार्शनिक तत्वों का शास्त्रीय निरूपण न कर, केवल दुःख निवृत्ति के लिए आचारणीय मार्ग का उपदेश किया। वास्तविकता तो यह है कि बुद्ध शुष्क

दार्शनिक नहीं थे। भगवान इस पक्ष में नहीं थे कि ऐसी दार्शनिक समस्याओं पर विचार किया जाए, जिसका व्यवहार में कोई उपयोग न हो, संसार शाश्वत है या अशाश्वत, अनन्त है या अन्तवान, आत्मा या शरीर एक ही है या अलग-अलग, मृत्यु पश्चात जीवन का प्रारम्भ होगा अथवा नहीं, क्या पुर्नजन्म होता है या नहीं, इस प्रश्नों को भगवान ने विवाद का विषय कहा, क्योंकि इन प्रश्नों का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष तत्वों से है, जिनके विषय में कोई मत निश्चित रूप से प्रतिपादित करना दुष्कर कार्य है। अतएव भगवान ने इस प्रश्नों को व्यावहारिक जगत में विवाद का विषय मानकर व्यावहारिक जीवन से दुःख का समूल नाश करना ही अपने दर्शन का आधारसूत्र एवं ध्येय निश्चित किया स्वयं प्रोष्ठपाठ के पूछने पर भगवान ने का कि **"प्रोष्ठपाद, यह न अर्थयुक्त है, न धर्मयुक्त, न ब्रम्हचर्योपयोगी, न निर्वेद के लिए न विराग के लिए, न विरोध के लिए है। इसलिए मैने उसे व्याकृत नहीं किया है।**[1] बुद्ध ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश करना चाहते थे जिससे वासना का क्षय हो। वे अपने उपदेशों में सार्वभौम आध्यात्मिक सत्य का समर्थन मात्र किए हैं। उनकी व्याख्या नहीं की है। भगवान जटिल दार्शनिक समस्याओं के सूक्ष्म विवेचन की अपेक्षा दर्शन के सरलीकरण में विश्वास रखते थे, जिससे जन सामान्य उसका पूर्णतया लाभ उठा सके। वस्तुतः बुद्ध तत्वदर्शी थे, तत्व व्याख्याता नही।

---

1 दीर्घनिकाय, जिल्द 1, पृष्ठ 157

कतिपय विद्वानों ने भगवान बुद्ध को न केवल नैतिक आचार का प्रचारक माना है, यह भी प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बुद्ध ने तत्व ज्ञान के उपदेश की उपेक्षा आखिरकार क्यों तथा किस परिस्थितियों में की? इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि संभवतः बुद्ध ने पारमार्थिक तत्व का निश्चित ज्ञान प्राप्त न किया हो तथा अज्ञानजन्य संशय की अवस्था में मौन धारण करना ही श्रेष्ठ माना हो, तो कुछ विद्वानों के अनुसार तत्व की अज्ञेयता अनुपयोगिता को ही मौन का कारण बताया है। अनेक संदर्भो से स्पष्ट होता है कि बुद्ध अपने को तत्वभिज्ञा मानते थे और स्वयं उपलब्ध तत्व तक अन्य को पहुँचाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने जिस ज्ञान को अर्जित किया था उसको आदेशित किया। शुष्क तार्किक ज्ञान की अनुपयोगिता अवश्य ही अनेक साधन मार्गो में स्वीकृत होती है और बुद्ध का अनेक दार्शनिक समस्याओं को अव्याकृत स्थापित करना ऐसी दृष्टि में उनकी आंशिक सहमति सूचित करता है किन्तु इससे यह अनुमेय नहीं है कि बुद्ध ने परमार्थ का निर्देश न कर केवल एक प्रकार की चर्चा का उपेदश किया है।[1] वस्तुतः बुद्ध ने मार्ग और गंतव्य दोनों का निरूपण किया, किन्तु यथा सम्भव। वे न शुष्क तर्कवादी थे कि परमार्थ को लक्षण प्रमाणवली में परिछिन्न करने का प्रयास करते, न ज्ञान रहित व्यवहारवादी कि सुपरष्कित

1 बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 68- प्रो0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

समीचीन दृष्टि को समस्त साधना का मूल्य न मानते। वे जानते थे कि परमार्थ तर्क और अतएव वाणी का अगोचर है किन्तु इस अगोचरता का अर्थ विशेषतः 'आनवधारणीयता' मानना चाहिए, न कि सर्वथा 'अविषयता'। बुद्धि और वाक् की सर्वथा अविषयता अर्थात सर्वथा अबोध्यता तथा अनभिद्येयता कल्पनातीत और स्वयं अबोध्य तथा अनभिद्येय है।[1] **"गुर्गेसतु मौनं व्याख्यानं"** की उक्ति बुद्ध के मौन पर चरितार्थ होती है। जो कि सीमित जगत के अन्तर्गत परस्पर विरोधों और व्यक्तियों को परम समझने वाले तर्क और वाक् की अपर्याप्तता और परमार्थ की अनन्तता के निर्देश में पर्यवसित होती है। जिस प्रकार उपनिषदों में अवाड्.मनसगोचर सत्य को प्रदर्शित करने हेतु अतदव्यावृत्ति रूप अपोह और उपमान का सहारा लिया गया है वैसे ही बुद्धदेशना में पाया जाता है। बुद्ध देशना में केवल कोरी दार्शनिक मीमांसा थी, न कोरी साधनचर्या अपितु यथाकथचित व्यवहार के सहारे परमार्थ की ओर संकेत था। चार आर्य सत्यों का विस्तृत निरूपण भगवान बुद्ध की भारतीय दर्शन को महत्वपूर्ण देन है। इसकी कुछ समानता 'योगशास्त्र' में देखी जा सकती है। अभिधर्मकोश भाष्य में आचार्य वसुबन्धु ने कहा है कि आर्यजन छोटे से भी दुःख से उद्वेलित हो जाते हैं, पृथक जन नहीं, जैसे ऊन के धागे का सिरा जब हथेली पर होता है, तब सत्व उसे अनुभव नहीं करता किन्तु वहीं जब आंख में पड़ जाता है तब बड़ी

---

1 बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 69- प्रो0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

पीड़ा उत्पन्न करता है। यहाँ पृथक जन हथेली के समान हैं जो दुःख रूपी धागे के सिरे को समझते और विद्वज्जन आंख के समान हैं जो (थोड़े ही) दुःख से बहुत उद्विग्न हो जाते हैं।[1] अतः मूढ़ जन को नरक तक में दुःख बुद्धि नहीं होती, किन्तु आर्यजन को श्रेष्ठ लोक में दुखबुद्धि होती है।

चार आर्य सत्यों का परम्परागत वर्णन इस क्रम से दिया जाता है–

1. दुःख आर्य सत्य।
2. दुःख समुदाय आर्य सत्य।
3. दुःख निरोध आर्य सत्य।
4. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद आर्य सत्य।

1. **प्रथम आर्य सत्य–दुःखः–** पालि एवं संस्कृत बौद्ध साहित्य में प्रायः दुःख की व्याख्या एक समान ही की गयी है। भगवान कहते हैं, जन्म लेना, वृद्ध होना, मरना, शोक करना, रोना–पीटना, पीड़ित होना, चिन्ता करना, परेशान होना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होना दुःख है। संक्षिप्त में, पाँचों ही उपादान स्कन्ध, यथारूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान भी, जिससे यह सत्व बना हुआ है, वह भी दुःख है।

---

1 अभिधर्मकोश भाष्य पृष्ठ 329

"जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, सोकपरिदेवदोमनस्युपापासापि दुक्खा अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खों वियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यथ्मपच्छं न लभते तम्पि दुक्खं संखितेन पन्चूपादानक्खम्धापि दुक्खा।"[1]

यह दुःख तीन विभागों में विभाजित किया गया है। 1. दुःख दुःखता 2. संस्कार दुःखता और 3. विपरिणाम दुःखता। जो स्वभाव से ही दुःख रूप है वे उत्पत्ति और स्थिति में दुःखकारक होने से परिणाम में भी दुःखकारक होते हैं, यही दुःख दुःखता है। 'धम्मपद' में कहा गया है कि सुख मानने से दुःख और भय उत्पन्न होता है क्योंकि समस्त संसार आग से जल रहा है तब उसमें आनन्द का अवसर ही कहाँ।[2] पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर मृत्यु का शासन न हो, जीवन दुःखों से परिपूर्ण है। सभी वस्तुएं जो उत्पन्न हुई हैं, दुःख, अनित्य और अनात्मरूप हैं।[3] बुद्ध कहते हैं कि सम्पूर्ण जीवन में दुःख छाया हुआ है एवं यह सर्वव्यापी है।-

"जीवन दुःखदायी है, क्षीणता, दुःखदायी है, रोग दुःखदायी है, अप्रिय के साथ संयोग दुःखदायी है, प्रिय का वियोग दुःखदायी है और कोई उत्कृष्ट

---

1 दीर्घ निकाय, जिल्द 2 पृष्ठ 305ण मन्झिम निकाय, जिल्द 3 पृ0 250, विनयदिस पृ0 10

2 धम्मपद, 146

3 धम्मपद 278, 298, 299

आकांक्षा जिसकी पूर्ति न हो सके वह भी दुःखदायी है। संक्षेप में पाँचों ही समष्टि रूप में शरीर, मनोवेश, प्रत्यक्षज्ञान, इच्छा और तर्क, जो आसक्ति से उत्पन्न होते हैं, दुःखदायी हैं।[1] बुद्ध अन्त में कहते हैं कि मनुष्य जन्म दुःख है, अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना दुःखदायी है एवं भाग्य के उतार-चढ़ाव भयावह हैं। धम्मपद में कहा गया है-"न तो आकाश में, न समुद्र के अन्तस्तल में और न पर्वत की कन्दराओं में, संसार में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं मिलेगा जहाँ मृत्यु के आक्रमण से बचा जा सके।[2] जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक क्लेश, आकांक्षा एवं नैराश्य, सभी आसक्ति से उत्पन्न हैं, अतः वे सभी दुख हैं। संसार में जो कुछ भी सुख की सामग्री दिखलाई पड़ती है वह सब बिना संस्कार-दुःखता के प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी प्राप्ति के लिए अनेक कष्टसाध्य प्रयत्न करने होते हैं। अतः वे सभी प्रयत्न संस्कार-दुःख हैं। सत्व सुख, लाभ के लिए एकानेक दान, पूजा, अर्चना, भेंट, शील, आचार आदि पुरूषार्थ करते है। ये सभी दान आदि प्रयत्न भी संस्कार दुख ही हैं। अतः दुःख हेय है, त्याज्य है।

2. दुःख समुदाय आर्य सत्य-

दूसरा आर्य सत्य है दुःख समुदाय। समुदाय का अर्थ कारण है-दुःख

---

1 बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 69-प्रो0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

2 भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड पृ0 294 डॉ0राधाकृष्णन

समुदाय अर्थात 'दुःख का कारण'। संसार मे दुःख ही नहीं बल्कि उसका कारण भी है। बिना कारण के कार्य नहीं होता, जब कार्य है तब उसका कारण भी अवश्य है। दुःख का कारण तृष्णा है! तृष्णा ही एक ऐसी है जो (सत्व का) पुनर्भव कराने वाली है। नन्दी (आसक्ति) और राग से युक्त है, यहाँ वहाँ (यत्र-तत्र) आनन्द खोजने वाली है। जन्म और मरण के चक्र को चलाने वाली तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है। तृष्णा ही इन्द्रिय-सुख के साथ कभी यहाँ, कभी वहाँ आनन्द खोजने वाली कामनारूप दुःख का कारण है। यह एक निर्विवाद सिद्धान्त है कि कोई वस्तु बिना किसी कारण के उत्पन्न नहीं होती। इसी ध्रुव सत्य के आधार पर बुद्ध ने दुःख का कारण जानने का प्रयास किया। दुःख के आदि कारण के विषय में बुद्ध कहते हैं – "यथार्थ में प्रबल तृष्णा ही है, जिसके कारण बार-बार जन्म होता है और उसी के साथ इन्द्रिय सुख आते हैं, जिनकी पूर्ति जहाँ तहाँ से की जाती है- "अर्थात् इन्द्रियों की तृप्ति के लिए प्रबल लालसा अथवा सुख समृद्धि की प्रबल लालसा ही दुःख का कारण है।"[1] 'मिलिन्दपन्ह' में राजा मीनेण्डर आचार्य नागसेन से इस सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं ।इस पर आचार्य नागसेन उत्तर देते हुए कहते हैं –

"हे राजन्! तीन वस्तुएं ऐसी हैं जो तुम्हें इस संसार में नहीं मिल सकती- अर्थात् वह वस्तु जो सचेतन अथवा अचेतन अवस्था में हो लेकिन जो

---

1. बुद्ध, पृ0 216-217

क्षय या मृत्यु के अधीन न हो, तुम्हें नहीं मिलेगी, ऐसा गुण, ऐन्द्रिय अथवा अनेन्द्रिय, जो अस्थाई न हो, तुम्हें नहीं मिलेगा: और उच्चतम् अर्थों में सत्नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे हम सत्-स्वरूप कह सकें।''[1]

शाश्वत दृष्टि को 'भव' कहते हैं क्योंकि यह आत्मा नित्य है, निरन्तर रहने वाली है, इस दृष्टि से संसार में बारम्बार जन्मने की जो इच्छा है यही भवतृष्णा है और उच्छेद दृष्टि 'विभव' कहलाती है; अर्थात् यह आत्मा मरने के बाद उच्छिन्न हो जाती है (नष्ट होती है)। इस दृष्टि के साथ होने वाली तृष्णा को 'विभव तृष्णा' कहते हैं। यही दु:ख समुदाय है।

3. **दु:खनिरोध आर्य सत्य-**

नि:शेष दु:ख के रोध अर्थात् रूक जाने को दु:खनिरोध कहते हैं। दु:ख के कारण का नाश का होना 'दु:खनिरोध' है। दु:खनिरोध में तृष्णा का निरवशेष प्रहाण हो जाता है, उससे मुक्ति हो जाती है, उसका वहाँ कोई स्थान नहीं रह जाता, यत्र-तत्र तृष्णा का जो आनन्द खोजना है उसका अवशेष प्रहाण हो जाता है। उस तृष्णा का प्रतिनि:सर्ग, व्यन्तीभाव, क्षय, विराग, निरोध, व्युपशम और अस्तंगम ही दु:खनिरोध है।

---

1. मिलिन्द, 4/7/2
   बुद्ध, पृ0 : 218-249 ओल्डन वर्ग

तृष्णा का नाश होने से 'उपादान' का निरोध होता है, 'उपादान' के निरोध से 'भव' का 'भव' से जाति, जरा-मरण, शोक, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास का निरोध हो जाता है। इस प्रकार समस्त दुःख का निरोध हो जाने से 'निर्वाणलाभ' होता है। राग-द्वेष एवं मोह के क्षय को निर्वाण कहते हैं। यह दृष्टि भव-निर्वाण है। इसी जन्म में इसका साक्षात्कार कर निर्वाण-सुख का अनुभव करते हैं। निर्वाण ही बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। दुःख के निवारण रूप आर्य सत्य यह है - "यथार्थ में यह मृत्यु ही है क्योंकि इस अवस्था में कोई वासना शेष नहीं रहती, यह एक उत्कृष्ट अभिलाषा रूपी तृष्णा का त्याग है- इसमें विरहित हो जाना एवं उससे मुक्ति पा जाना, तभी इसके आगे उसे पास न फटकने देने का नाम निर्वाण है। "निर्वाण" शब्द का अर्थ है "बुझ जाना" अथवा "ठंडा होना"। बुझ जाने से विलोप हो जाने का संकेत है। ठंडा हो जाने का तात्पर्य सर्वथा शून्य भाव नहीं है बल्कि ऊष्णतामय वासना का नष्ट हो जाना है।[1] बौद्ध धर्म के अनुसार निर्वाण का स्वरूप ईश्वर की कृपा से उसका साहचर्य नहीं है क्योंकि उसका तात्पर्य होगा कि जीवित रहने की इच्छा बराबर बनी रहे । बुद्ध का आशय केवल मिथ्या इच्छा का विनाश करना था, जीवन मात्र का विनाश करने से नहीं था। काम, वासना, घृणा एवं

---

1. भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, पृ0 364 - डॉ0 राधाकृष्णन

अज्ञान के नाम का ही निर्वाण है। निर्वाण के विषय में नागसेन ने मिलिन्द से कहा था कि "निर्वाण समुद्र की भांति गहरा, पर्वत की भांति ऊँचा एवं मधु की भाँति मधुर है।" अतः समस्त दुःखों का निरोध ही निर्वाण है। दुःखनिरोध से तात्पर्य समस्त दुःखों के कारणों का निरोध करना है।

4. **दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य** -

प्रतिपद् का अर्थ है मार्ग। दुःख निरोध करने के उपायभूत मार्ग को दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद् कहते हैं। इस मार्ग के आठ अंग है - सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक्, सम्यक कम्रान्त, सम्यक आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति एवं सम्यक समाधि।[1] इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ही सत्व दुःखों का निरोध कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। दुःख का निरोधोपाय बतलाते हुए बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का उपदेश किया। यह अष्टांगिक मार्ग वही है जिसका अनुशीलन करके स्वयं बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। यह अष्टांगमार्ग बौद्ध धर्म का "आचार मार्ग" है। यह मार्गो में श्रेष्ठ है **'मग्गानं अट्ठङ्कि.को सेट्ठो।'** 'शील समाधि' और प्रज्ञा ये तीनों ही बौद्ध धर्म की आधारशिला है, जिनके अभ्यास से तृष्णा का निरोध किया जाता है। उक्त आठों अंग शील, समाधि और प्रज्ञा में अन्तर्भूत हो जाते हैं। सम्यग्दृटि और सम्यक् संकल्प प्रज्ञा

---

1. भारतीय दर्शन - प्रथम खण्ड, पृ0 341

के, सम्यग्वाक्, सम्यग्कर्मान्त और सम्यक आजीव 'शील' में तथा शेष सम्यग्वयायाम, सम्यकस्मृति सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ''समाधि''।

1. **सम्यग्दृष्टि :-**

सम्यग्दृष्टि अष्टांगिक मार्ग की प्रथम सीढ़ी है। इसका अर्थ है - ठीक अथवा यथार्थ दृष्टि। यह दर्शन और ज्ञान से उपेत होती है, वस्तुओं का जैसा स्वरूप है, उनका उसी रूप से ज्ञान और दर्शन होना ही सम्यग्दृष्टि है। लोक परलोक, माता पिता, दान, हुत, अच्छे-बुरे कर्मो का फल-विपाक है, ऐसा ज्ञान होना ही सम्यग्दृष्टि है। 'अभिधम्मपिटक' के 'विभग' ग्रन्थ में चार आर्यसत्यों के ज्ञान को ही 'सम्यग्दृष्टि' कहा गया है। संसार दुःख से पीड़ित है, सत्त्व तृष्णाजाल में आबद्ध है। वह इस जाल से मुक्त हो सकता है, मुक्त होने का उपाय भी है। इसे जानना, सम्यक रूप से इनका दर्शन करना ही 'सम्यग्दृष्टि' है। जो कुशल और अकुशल को जानता है उसे भी सम्यग्दृष्टि कहा गया है। नाम और रूप धर्मो में अनित्यता, दुःखता एवं अनात्मता का विचार करने वाला ज्ञान 'विपश्यना लौकिक सम्यग्दृष्टि' है।[1] लोकोत्तर मार्ग एवं फल में सम्प्रयुक्त ज्ञान अर्थात् आर्य अष्टांगिक मार्ग में होने वाला ज्ञान लोकोत्तर सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यह लोकोत्तर, सम्यग्दृष्टि भी दुःख को जानने, समुदय सत्य का

1. अर्थविनिश्चय सूत्र, एन0एच0 साम्तानी, पृ0 31

प्रहाण करने, निरोध सत्य का साक्षात्कार करने और मार्ग सत्य की भावना करने में चार प्रकार की हो जाती है।

2. **सम्यक संकल्प**-

सम्यक् संकल्प सम्यक् दृष्टि की ही उपज है। यह त्याग के लिए तीव्र इच्छा है, सबके साथ मिलकर प्रेम पूर्वक जीवन बिताने की आशा (संकल्प) है, एवं यथार्थ मनुष्य जाति के निर्माण की महत्वाकांक्षा है। पृथकता के विचार को त्यागकर महत्वाकांक्षी व्यक्ति सम्पूर्ण जगत के लिए कार्य करता है। संकल्प यथार्थ होना चाहिए। सम्यक-संकल्प को निष्काम-संकल्प, अल्पवाद-संकल्प एवं अविहिंसा संकल्प कहा गया है अर्थात् राग-द्वेष-वर्जित संकल्प ही सम्यक संकल्प है। दृढ़-संकल्प रखने वाला महत्वाकांक्षी व्यक्ति सदैव प्राणिनाम के कल्याण के लिए तत्पर रहता है।

3. **सम्यक् वाक्**-

सम्यक संकल्प कर लेने के उपरान्त सम्यक वाक् का अभ्यास किया जाता है। **"सम्यक वाक् का तात्पर्य है, असत्य से दूर रहना, किसी की चुगली करने से अपने को बचाना, कठोर भाषा के प्रयोग से वचना एवं निरर्थक वार्तालाप से दूर रहना।"** धार्मिक कथाएं प्रलाप नहीं होतीं, अतः धार्मिक कथाओं की चर्चा करना अथवा आर्य-मौन का पालन करना ही सम्यक्

वाक् कहलाता है। दूसरे शब्दों में मृषावाद, पैशून्य, परूषता सम्प्रलाप इनसे विरति सम्यक् वाक् है।

4. **सम्यक् कर्म** -

सम्यक् कर्म निःस्वार्थ कर्म का नाम है। प्रथावाद अथवा रीतिबन्धन, प्रार्थना, उपासना, कर्मकाण्ड, वशीकरण एवं जादू-टोना, मनुष्य अथवा पशु की बलि दिए जाने वाले यज्ञ-योग आदि में बुद्ध का कोई विश्वास नहीं था। **"धर्म पर आरूढ़ पुरूष के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना सौ वर्ष तक अग्नि पूजा करते रहने से कहीं श्रेष्ठ है।"** सम्यक् कर्म अहिंसायुक्त भावना से किए जाते हैं। संक्षेप में, सम्यक् कर्म उन कर्मो को कहा जाता है जो सांसारिक प्राणियों पर अनुकम्पा करने के आशय से लिए जाते हैं।

5. **सम्यक् आजीव**-

सम्यक् आजीव अर्थात् ठीक अथवा यथार्थ आजीविका। सम्यक् आजीव का अर्थ है सत्त्वों के जीवनयापन के सत्साधन । इस संसार में हजारो सत्त्व हजारों तरह से अपनी-अपनी जीविका चलाते है। भगवान बुद्ध ने स्वयं 'दीर्घनिकाय' के ब्रह्मजाल सुक्त में सत्त्वों की नाना आजीविकाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि सत्त्व अपने जीवन का निर्वाह कैसे कैसे साधनों को अपनाकर करते है। लोग विष, शस्त्र, सत्त्व, मंदिरा, मांस बेचकर, झूठे नाप तौल से

ग्राहकों को धोखा देकर, ढासों, नौकरों एवं जानवरों का व्यापार आदि करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, ये ही सब मिथ्या आजीव है और इन्हीं आजीविकाओं का सहारा न लेकर सदाचरण से जीवन-यापन करना ही सम्यक् आजीव है।[1]

6. **सम्यक् व्यायाम-**

'व्यायाम' का अर्थ यहाँ 'प्रयत्न' अथवा 'पुरूषार्थ' है। अकुशल धर्मो का त्याग करना और कुशल धर्मो का उपार्जन करना ही सम्यक् व्यायाम है। यह चार प्रकार का होता है -

1. अनुत्पन्न अकुशल कर्मो को उत्पन्न न करना ।
2. अनुत्पन्न कुशल कर्मो को उत्पन्न करना ।
3. उत्पन्न अकुशल कर्मो का प्रवाण करना।
4. उत्पन्न कुशल कर्मो का संरक्षण करना।

7. **सम्यक् स्मृति-**

स्मृति का अर्थ स्मरण है। सम्यक् स्मृति का अर्थ हुआ ठीक स्मरण, यथार्थ स्मृति। स्मृति हिताहित का अन्वेषण कर, अहित का त्याग कर हित का आदान-प्रदान करती है, कुशल धर्मो की ओर ले जाती है। स्मृति जिसकी

---

[1]. दीर्घनिकाय 1/5

जितनी दृढ़ होगी वह उतना ही जागरूक और सावधान होगा तथा ज्ञान-लाभ में बढ़ा-चढ़ा रहेगा। स्मृति आलम्बन में प्रवेश कर विषय को निश्चित रूप से चित्त में स्थिर करती है। लोभ और दौमर्नस्य को दूर कर काय, वेदना, चित्त और धर्म अर्थात् मन के विषयों के प्रति जागरूक, प्रयत्नशील, ज्ञानयुक्त, सावधान रहना ही सम्यक स्मृति है। 'सम्यक् स्मृति' को बौद्ध धर्म में काफी महत्व दिया गया है। यह ज्ञान प्राप्ति एवं विशुद्धि तथा निर्वाण का साक्षात्कार कराने का एकमात्र मार्ग है। भगवान बुद्ध बारम्बार इसी कारण अपने शिष्यों को स्मृति और सम्प्रज्ञान से युक्त रहने के लिए आदेश देते हैं। इसी से **'बोधिचर्यावतार'** में कहा भी गया है कि **'नरक की पीड़ा का स्मरण करते हुए भी स्मृति को मन से क्षण भर के लिए भी हटाना चाहिए। सदा जागरूक, स्मृतिवान भिक्षु ही तृष्णाजाल को काटकर निर्वाण प्राप्त करता है।'**

8. **सम्यक समाधि-**

कुशल चित्त की एकाग्रता को 'समाधि' कहा गया है। समाधिस्थ भिक्षु, क्रोध, आलस्य, उद्धतपना, पछतावा और सन्देह से विगत होता है। उसे सांसारिक लाभ थोड़ा भी नहीं डिगा सकते। वह तत्वों पर महाकरूणापूर्ण चित्त से वितरण करता है, वह उपेक्षावान् होता है, वह पंचस्कन्धों को दु:ख, अनित्य

और अनात्मरूप समझता है। योगी भिक्षु सभी संस्कारों का शमन कर, तृष्णा का प्रहार कर निर्वाण-लाभ करता है।

सम्यक् समाधि में चार ध्यान आ जाते हैं, जो निम्न प्रकार है :-

(I) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक पाँच ध्यानांगों सहित प्रथम ध्यान होता है।

(II) अध्यात्म सम्प्रसाद, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक चार ध्यानांगों सहित द्वितीय ध्यान होता है।

(III) उपेक्षा, स्मृति, सम्प्रदाय, सुख और समाधि से युक्त पांच ध्यानांगों सहित तृतीय ध्यान होता है।

(IV) दु:खासुखावेदना, उपेक्षापारिशुद्धि, स्मृतिपारिशुद्धि और समाधि इन चार ध्यानांगों सहित चतुर्थ ध्यान होता है।

प्रतीत्य समुत्पाद-

प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धान्त बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों में एक हैं। भगवान बुद्ध ने इसका भी साक्षात्कार सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करते समय ही किया था। प्रतीत्य समुत्पाद का प्राय अर्थ 'सापेक्ष कारणतावाद' है। यद्यपि बुद्ध कार्यकारण के अविच्छिन्न प्रवाह को नहीं मानते, फिर भी वे मानते हैं कि एक के होने पर दूसरे की उत्पत्ति होती है- 'इमस्मि सति इदं होति'। इस तरह

बौद्ध धर्म में 'प्रत्यय' का अर्थ हेतु है। अतः प्रतीत्य समुत्पाद विच्छिन्न प्रवाह को दर्शाता है। इसी से आचार्य नागार्जुन ने शून्यवाद को जन्म दिया है। प्रतीत्य समुत्पाद में 'प्रति' का अर्थ प्राप्ति है। 'इण' धातु गत्यर्थक है किन्तु उपसर्ग लगने से धातु का अर्थ बदल जाता है, इसलिए 'प्रति इ' का अर्थ प्राप्ति है और 'प्रतीत्य' का अर्थ 'प्राप्त कर' है 'पद' धातु सत्तार्थक है। 'सम+उत्त' उपसर्ग पूर्वक इसका अर्थ 'प्रादुर्भाव' है। अतः प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ हुआ प्रत्यय प्राप्त कर प्रादुर्भाव।[1] भगवान बुद्ध स्वयं कहते है कि जो प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है वह धर्म को देखता है और जो धर्म को देखता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है।[2] प्रतीत्य समुत्पाद को आचार्य बुद्धभोष दो भागों में बांटते है - (1) प्रतीत्य और (2) समुत्पाद । हेतु-समूह के प्रतिमुख होने से 'प्रतीत्य' है और अकेला उत्पन्न न होकर साथ में उत्पन्न न होने से अर्थात् पारस्परिक स्वभाव वाले धर्मों को ही उत्पन्न करने से 'समुत्पाद' है। इस तरह प्रतीत्य पद से शाश्वत आदि दृष्टियों का और समुत्पाद से उच्छेद आदि दृष्टियों का प्रहाण हो जाता है और दोनों के मध्य का रास्ता प्रतिभासित होता है। इसी से प्रतीत्य समुत्पाद को 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद का अनेक जगह विभिन्न प्रकार से, विभिन्न व्यक्तियों के आशय एवं अधिमुक्ति के अनुसार उपदेश दिया है। प्रतीत्य सिद्धान्त का

---

1. अभिधर्मकोश भाष्य - पृ0 138
2. मज्झिम निकाय 1/3/8

दार्शनिक विकासवाद में बौद्ध धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में हुआ है, परन्तु इसके मूल बीज सुत्तपिटक में मिलते हैं। भगवान ने संसार में सवर्ग दु:ख व्याप्त देखकर उसके निदान पर चिन्तन किया। यह एक निर्विवाद सत्य है कि कोई वस्तु बिना कारण के उत्पन्न नहीं होती। इसी ध्रुव सत्य के आधार पर भगवान ने दु:ख का हेतु खोजने की चेष्टा की। तत्कालीन सांख्यवादियों का मत था कि समस्त वस्तुएं सहेतुक होती है। अर्थात् 'परिणाम' हेतु में पहले से ही विद्यमान रहता है। इसके विपरीत स्वभाववादियों का एक दूसरा मत था कि सभी वस्तुएं निर्हेतुक होती है अर्थात् किसी भी वस्तु का कोई भी हेतु नहीं होता और वे स्वयं ही स्वभावत: घटित या उत्पन्न होती है। भगवान ने इन दोनों मतों को अतिशयवाद बताया और अपने मध्यम मार्ग की आधार नीति के अनुसार उन्होंने हेतु फलवाद का प्रतिपादन किया। इसे मज्झिम निकाय में प्रतीत्य समुत्पाद कहा गया है। प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धान्त के अनुसार किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति किसी अन्य वस्तु के अस्तित्व पर निर्भर करती है। पूर्ववर्ती वस्तु के बिना उत्तरवर्ती वस्तु का उद्भव नहीं हो सकता। अत: पूर्ववर्ती वस्तु को हेतु तथा उत्तरवर्ती वस्तु को फल माना जाता है। बिना हेतु के फल असम्भव है। उत्तरवर्ती वस्तु पूर्ववर्ती वस्तु में पहले से विद्यमान नहीं होती, वह पूर्ववर्ती के द्वारा केवल निर्धारित अथवा प्रतीत्य समुत्पन्न होती है। इस प्रकार भगवान ने सहेतुवाद एवं निर्हेतुवाद दोनों से असहमति व्यक्त करते हुए प्रतीत्य

समुत्पाद का प्रतिपादन किया। प्रतीत्य समुत्पाद का नियम अटल और अमिट है। संसार के सभी सत्त्व इस नियम के वशीभूत है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य इन तीनों ही कालों में यह नियम निर्वाध लागू होता है। यह अनादि और अनन्त है। प्रतीत्य समुत्पाद जगत-सृष्टि को स्पष्टतः द्योतित करता है। प्रतीत्य समुत्पाद का मुख्य अभिप्राय दुःख की उत्पत्ति समझाना था अथवा कार्य-कारण-नियम का सामान्यतः प्रतिपादन था, इस पर भी मतभेद है। यह अवसर माना जाता है कि चिन्तन के इतिहास में प्रतीत्य समुत्पाद कार्य-कारण-भाव का व्यापक रूप में सर्वप्रथम प्रतिपादन है और इसका महत्व इसी पर अवलंबित है।[1] प्रतीत्य समुत्पाद में द्वादश अंग है, जिससे इसे द्वादशांग भी कहते है। इसमें एक अंग दूसरे के प्रत्यय से होता है। इन अंगों को 'निदान' भी कहते है। प्रतीत्य समुत्पाद को भवचक्र भी कहते है, ये द्वादशांग इस प्रकार है :- 'अविद्या' प्रत्यय से 'संस्कार', 'संस्कार' प्रत्यय से 'विज्ञान', 'विज्ञान' प्रत्यय से 'नामरूप' 'नामरूप' प्रत्यय से तृष्णाः तृष्णा प्रत्यय से 'उपादान', 'उपादान' प्रत्यय से 'भव', प्रत्यय से 'जाति', 'जाति' प्रत्यय से -जरा-मरण-शोक-परिदेव-दुःख' दौर्मनस्य और 'उपादास' होते हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण दुःख स्कन्ध का समुदय होता है। यही प्रतीत्य समुत्पाद है।[2]

---

1. डाग्लॉग्स ऑव दि बुद्ध, पृ0 42, राइज डेविड्स
2. अभिधम्मत्थसंगहो (हि0अनु0) पृ0 812

द्वादश अंग-

1. **अविद्या :**

अविद्या का अर्थ है -अज्ञान' । प्राय: चार आर्य सत्यों का अज्ञान ही अविद्या है। अनित्य दु:ख और अनात्मभूत जगत में आत्मा को खोजना या सुख को खोजना अविद्या है। 'अभिधर्मकोश' के भाष्यकार आचार्य वसुबन्धु पूर्वजन्म की क्लेशावस्था को ही अविद्या कहते हैं। आचार्य बुद्धघोष अपनी अन्यतम रचना 'विसुद्धिमग्ग' के 'प्रज्ञाभूमि' नामक अध्याय में अविद्या की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह अविद्या ही स्कन्धों की राशि होने, आयतनों के आयतन होने, धातुओं के शून्य होने, इन्द्रियों के अधिपति होने और सत्यों के यथार्थ ज्ञान को नहीं कराती। अत: यही अविद्या है। 'अविद्या, अज्ञान 'अदर्शन' और मोह' इत्यादि अविद्या के पर्यायवाची शब्द हैं। अविद्या संस्कार का मूल कारण भी नहीं कही जा सकती है क्योंकि भगवान ने स्वयं 'मज्झिम निकाय' में कहा है कि 'अविद्या' का कारण आस्रव है अर्थात आस्रव से ही अविद्या उत्पन्न होती है और फिर संस्कार आदि समस्त भव दु:खों का उत्पाद होता है। अत: अविद्या के मूल में आस्रव है और आस्रव के मूल में अविद्या। इस तरह यह भवचक्र चलता रहता है।

2. **संस्कार :**

संस्कार के कई अर्थ प्रचलित है, किन्तु इधर संस्कार का अर्थ 'कर्म' माना गया है। यह पूर्वजन्म की कर्मावस्था है। अविद्या वश सत्त्व जो भी भला

बुरा 'कर्म' करता है वही 'संस्कार' कहलाता है। आचार्य बुद्धघोष संस्कृत प्रत्युत्पन्न धर्मों का अभिसंस्कार करने वाली लौकिक कुशल एवं अकुशल चेतना को ही 'संस्कार' कहते है।

यह संस्कार तीन प्रकार का होता है -

क. पुण्याभिसंस्कार

ख. अपुण्याभिसंस्कार ।

ग. अनिञ्जाभिसंस्कार ।

संस्कार के और भी तीन विभाग किए गए हैं :-

क. काय संस्कार ।

ख. मनः संस्कार ।

ग. वाक् संस्कार ।

3. **विज्ञान :**

'विज्ञान' विजानन को कहते है जिसका अर्थ है- वे चित्तधाराएं जो पूर्वजन्म में किए गए कुशल या अकुशल कर्मो के विपाक-स्वरूप प्रकट होती है और जिनके कारण ही सत्त्व अपनी इन्द्रियों के विषय में जानकारी करता है। विज्ञान प्रत्युपन्न जीवन की वह अवस्था है जब प्राणी माता के गर्भ में प्रवेश करता है और चेतना प्राप्त करता है। यह गर्भ अथवा प्रति-सन्धि का क्षण है, इसे उपपत्ति क्षण भी कहते हैं।

4. **नामरूप :**

'नामरूप' में दो शब्द है– 'नाम एवं रूप' । रूप में चार महाभूत– पृथ्वी, जल, तेज और वायु तथा 'नाम' में संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान में चार स्कन्ध आते हैं। दोनों को मिलाकर ही पंचस्कन्ध नामरूप कहलाते हैं। नामरूप 'विज्ञान' से होता है। जब विज्ञान माता की कुक्षि में प्रतिसन्धि ग्रहण करता है तभी से नाम रूप उत्पन्न होना शुरू हो जाते हैं और नाम क्रमश: सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हैं। नाम को मानसिक धर्म भी कहते हैं और रूप शारीरिक धर्म कहे जाते हैं, क्योंकि रूप से ही सत्त्व की काया की संरचना होती है।

5. **षडायतन :**

छह आयतन अर्थात् पांच इन्द्रियां और मन षडायतन कहलाते हैं। ये 'षडायतन' ही ज्ञानोत्पत्ति में सहायक होते हैं। षडायतन उस अवस्था का सूचक है जब सत्त्व माता के उदर से बाहर आता है और उसकी छह इन्द्रियां आंख, कान, नाक, जिह्वा, स्पर्श और मन पूर्णतया तैयार हो जाती है परन्तु वह अभी तक उन्हें प्रयुक्त नहीं कर सकता।

6. **स्पर्श :**

इन्द्रिय और विषय के सन्निपात को स्पर्श कहते हैं। यह वह अवस्था है जब सत्त्व बाह्य जगत के पदार्थो के सम्पर्क में आता है। यह पंचन्द्रिय और मन, इन छह के भेद से छह प्रकार का होता है।

7. **वेदना :**

वेदना का अर्थ अनुभव करना है। इन्द्रिय और विषय के संयोग से मन पर जो प्रथम प्रभाव होता है, उसी का काम 'वेदना' है। चित्त से वेदना का अटूट का सम्बन्ध है। चाहे वह दुःख, सुख, न दुःख और न सुख रूप ही क्यों न हो। इस प्रकार वेदना भी तीन प्रकार की हो जाती है –

1. **सुखावेदना ।**
2. **दुःखावेदना ।**
3. **असुखादुःखावेदना ।**

8. **तृष्णा :**

षडविषयों के प्रति प्यास का होना 'तृष्णा' है। यह आसक्ति रूप होती है। यह तीन प्रकार की होती है :-

1. **काम तृष्णा ।**
2. **भव तृष्णा ।**
3. **विभव तृष्णा ।**

यह त्रिविध तृष्णा ही सत्त्व को भवचक्र में घुमाने वाली होती है। तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है। यह विषय-भेद में छह प्रकार की होती है।

9. **उपादान :**

विषयों का दृढ़तापूर्वक ग्रहण करना 'उपादान' है। यह चार प्रकार का होता है :-

क. **कामोपादान** - अर्थात् कामवासनाओं में चिपटे रहना ।

ख. **दृष्टधुपादान** - मिथ्या सिद्धान्तों में विश्वास करना ।

ग. **शीलव्रतोपादान** - व्यर्थ के शीलाचर में लगे रहना ।

घ. **आत्मवादोपादान** - आत्मा के अस्तित्व में दृढ़ आग्रह करना।

10. **भव :-**

होना मात्र 'भव' है अर्थात् पुनर्जन्म कराने वाला कर्म भव कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है -

क. उपपत्ति भव ।

ख. कर्म भव ।

जिस-जिस उपादान को लेकर सत्त्व जिस-जिस लोक में जन्मता है, उसका वही उपपत्ति भव कहलाता है। जो कर्म पुर्नजन्म कराने वाले होते हैं उन्हें कर्म भव कहते हैं।

11. **जाति :**

जाति अर्थात् 'जन्म'। उत्पन्न होना जाति है। सत्त्व पूर्वभव के कारण ही उत्पन्न होता है। जाति पंचस्कन्धों के स्फुरण की अवस्था है। 'मज्झिमनिकाय' में

भगवान ने कहा है कि उन उन सत्त्वों का उस उस सत्त्व निकाय में जाति, सज्जाति, अवक्रान्ति, अभिनिर्वृति स्कन्धों का प्रादुर्भाव और आयतनों का प्रतिलाभ यही जाति है।[1]

12. **जरामरण :**

जरा और मरण ये दो अवस्थाएं हैं। जीर्ण होना जरा है और मृत्यु होना मरण है। भगवान कहते हैं कि उन उन सत्त्वों का उस उस सत्त्व निकाय में जरा, जीर्णता तथा दाँतों का टूटना, बालों का पकना, त्वचा का सिकुड़ना अर्थात् शरीर में झुर्रियां पड़ जाना, आयु की हानि और इन्द्रियों का पक जाना जरा है।[2] उन उन सत्त्वों का उस उस सत्त्व निकाय से च्युत होना, च्यवनवा, भेद, अन्तर्धान, शरीर का गिरना, मृत्यु- मरण, काल, स्कन्धों का भेद (टूटना) और जीवितेन्द्रिय का उच्छेद है, यही मरण है।[3]

'प्रतीत्य समुत्पाद' के द्वादशांगों का यही क्रम है जिससे यह भव चक्र चल रहा है। यदि जरामरण, शोक आदि को दूर करना है तो जन्म की श्रृंखला को ही तोड़ना होगा। भव के प्रत्ययों को हटाना होगा। भव के निरोध

---

1. मज्झिमनिकाय, 1/50
2. मज्झिम निकाय, 1/49
3. मज्झिम निकाय, 1/50

से क्रमशः उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार और अविद्या के प्रत्ययों का भी प्रहाण होगा।

इस प्रकार प्रतीत्य समुत्पाद केवल दार्शनिक सिद्धान्त ही नहीं, बल्कि आन्तरिक और बाह्य जीवन के समस्त कार्य-कलापों के समुदय और निरोध को प्रकाशित करने वाला है जिससे यह ज्ञात होता है कि सत्त्व इसे सम्पक्तया जानकर स्वयं उनका साक्षात्कार कर उनकी मुक्ति (निर्वाण) प्राप्त कर सकता है।

त्रिलक्षण : अनित्य, दुःख और अनात्म :

1. **अनित्य या क्षणिकवाद :-**

बौद्ध धर्म की दृष्टि से सभी वस्तुएं संस्कृत है और जो संस्कृत है वह अनित्य हैं। जो नित्य तथा स्थायी प्रतीत होता है वह भी विपरिणामधर्मी तथा विनाशशील है। अतः कोई भी वस्तु नित्य नहीं है। संसार का प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है, क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। भगवान ने तत्त्वों का विभाजन तीन भागों में किया है -

क. स्कन्ध

ख. आयतन

ग. धातु

स्कन्ध पाँच है - रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान । रूप-पृथ्वी, जल, तेज और वायु है।[1] वेदना सुखदुःखानुभूत होती है। संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका है।[2] संसार कर्म है और विज्ञान चेतना या मन है। संज्ञा संस्कार, वेदना और रूप के संसर्ग से विज्ञान की विभिन्न स्थितियां होती है। इसी से इन्हें अनित्य बतलाया गया है।

आयतन बारह है - छह इन्द्रियां (चक्षु से मन तक) और छह उनके विषय (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म) मिलकर बारह आयतन होते हैं।

अट्ठारह धातु - उपर्युक्त 12 आयतनों में उनके छह विज्ञान मिलाने पर 18 धातुएं हो जाती है। संयुक्त निकाय में भगवान ने कहा है कि चारो महाभूतों की यह काया एक, दो, तीन, चार, पांच, छह और वर्ष तक ही मौजूद देखी जाती है किन्तु जिसे चित्त या मन अथवा विज्ञान कहते हैं, वह अहर्निश दूसरा ही उत्पन्न होता है और दूसरा ही नष्ट होता है। इस तरह एक का विनाश और दूसरे का उत्पाद लगातार होता रहता है, यही अनित्यवाद है और यही क्षणिकवाद है। इस अनित्यवाद अथवा क्षणिकवाद का जन्म प्रतीत्य समुत्पाद से ही हुआ है।

---

1. अभिधर्मकोशभाष्य, पृ0 8, 1/12
2. अभिधर्मकोशभाष्य, पृ0 10

2. **दु:खवाद :-**

पालि एवं संस्कृत, बौद्ध साहित्य में प्राय: दुख की व्याख्या एक ही समान की गयी है। भगवान कहते हैं – जन्म लेना, बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, पीड़ित होना, चिन्ता करना, परेशान होना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होना, दु:ख है। जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, क्लेश, आकांक्षा और नैराश्य सभी आसक्ति से उत्पन्न है अत: वे सभी दु:ख हैं।

3. **अनात्म :**

अनात्म अर्थात् आत्मा का अभाव। भगवान ने आत्मा के लिए सत्काय शब्द का प्रयोग किया है। सत्काय का अर्थ सत् अर्थात् नित्य, ध्रुव और काय अर्थात् नाम (रूप के अतिरिक्त के चार स्कन्ध) किया गया है जो नित्य, ध्रुव और अपरिणामी है, यही दृष्टि रखना 'सत्काय दृष्टि' है। पञ्चोपादान स्कन्ध, जिससे काया का अस्तित्व सिद्ध होता है, उसमें नित्यादि दृष्टि रखना 'सत्काय' है।

भगवान ने आत्मा के अस्तित्व का निराकरण किया है। वे इस मत को नहीं मानते कि आत्मा नित्य है, ध्रुव है, अजर-अमर है, सदा एक है, यह अनात्मवाद ही बौद्धधर्म की दार्शनिक भित्ति है। 'महावग्ग' में भगवान ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं का उपदेश देते हुए आत्मा के अस्तित्व का निराकरण तथा अनात्मवाद का प्रतिपादन किया है। यहाँ कहा गया है कि –

भिक्षुओं! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये सभी यदि आत्मरूप होते तो इनमें रोग न होता और हम कह सकते हैं कि यह मेरा रूप है, संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान है और मेरे रूप, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और वेदना ऐसे हो, ऐसे न हो, किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि वे सभी अनित्य, दुःख और विपरिणामधर्मी है। उनसे यह समझना कि 'यह मेरा है' 'यह मैं हूँ' यह मेरी आत्मा है भ्रम है।

मज्झिम निकाय में आता है कि एक बार जब अग्निवेश गोत्री सत्त्वक साधु ने गौतम बुद्ध से पूछा कि आप अपने शिष्यों को कौन-सी शिक्षा देते हैं, तब ने उत्तर में कहा कि मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान अनित्य, दुःख और अनात्म है; इसकी शिक्षा अपने शिष्यों को देता हूँ।[1] संयुक्त निकाय में भगवान ने कहा, "भिक्षुओं, चक्षु तुम्हारा नहीं है रूप तुम्हारा नही है, इन्हें छोड़ों; निर्वेद प्राप्त करो'।

मज्झिम निकाय के प्रथम सुक्त 'मूलपर्यायसुक्त' में बुद्ध ने कहा है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु तथा श्रुत, स्मृत और विज्ञान सबको न मै, न मेरा समझना चाहिए क्योंकि ये मेरे नही है और न ही इनका हूँ। यही बुद्ध का अनात्मवाद है।

---

1. मज्झिमनिकाय, 1/4/5

अनीश्वरवाद :-

बुद्ध के अनित्य, दुःख और अनात्मवाद में ईश्वर या ब्रह्मा सदृश सृष्टिकर्ता के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। फिर भी त्रिपिटक में कई जगह जहां भी ईश्वर का जिक्र किया गया है, वहाँ बुद्ध ने ईश्वर का निराकरण ही किया गया है, इस तरह बौद्ध धर्म निरीश्वरवादी है।

'दीघनिकाय' के 'पथिक सुत' में ईश्वर का उपहास करते हुए बतलाया गया है कि एक समय बुद्ध भार्गव गोत्रीय परव्राजक से कहते हैं, भार्गव। जब मैं ईश्वर को मानने वाले श्रमणों एवं ब्राह्मणों के पास जाकर पूछता हूँ कि 'आप क्या सचमुच ईश्वर या ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता मानते हैं 'तब वे कहते हैं हाँ । मैं उनसे पुनः पूछता हूं कि 'आप लोग ईश्वर के कर्त्तापन को कैसे श्रेष्ठ मानते हैं ? ऐसा पूछने पर वे उल्टा मुझसे पूछते है, मैं उनको इस प्रकार समझाता हूँ बहुत दिनों के बीतने पर इस संसार का प्रलय हुआ फिर चिरकाल बाद लोक की उत्पत्ति हुई। लोक की उत्पत्ति होने पर शून्य ब्रह्म विद्यमान प्रकट हुआ। कोई सत्व आयु क्षय होने पर उसमें उत्पन्न हुआ। बहुत समय हो गया। अकेले रहने के कारण उसमें ही वह ऊब गया और भयभीत भी हुआ। उसका मन हुआ कि अच्छा ये, दूसरे सत्व भी यहाँ आवे। दूसरे सत्व भी आयु क्षीण होने पर शून्य ब्रह्म विभा में उत्पन्न होते हैं। जो सत्त्व वहाँ पहले था उसके

मन में होता है कि मै ब्रह्मा हूँ। कर्त्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्वामी, भूत तथा भविष्य के सत्त्वों को जन्म देने वाला पिता हूँ। मैने ही इन सत्वों को उत्पन्न किया है। मेरे ही चित्त में ऐसा पहले हुआ था कि दूसरे सत्त्व यहाँ आवे। इसी कारण वे यहाँ आये है जो सत्त्व उसके बाद उत्पन्न होता है कि यह ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता है क्योंकि यह मुझसे पहले यहाँ था और हम लोग पीछे आए हैं। इस प्रकार दूसरे सत्त्व काया को छोड़कर इस लोक में आते हैं, समाधि को प्राप्त कर उससे पूर्वजन्म का स्मरण करते हैं, तब वह कहता है जो वह कहता है जो वह ब्रह्मा, ईश्वर है, कर्ता है, वह नित्य ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार और सदा के लिए तद्रूप रहने वाला है और हम लोग उसके ही द्वारा उत्पन्न किए गए हैं अतः अनित्य, अध्रुव, अल्पायु एवं मरणशील है। इस तरह ईश्वर के कर्त्तापन को श्रेष्ठ बतलाया गया है।[1]

इस प्रकार सुत्तों में ईश्वर का खण्डन किया गया है। बुद्ध का मंतव्य है कि ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है, जो इस लोक का सृष्टिकर्ता हो, इस लोक का संचालक हो। सभी सत्त्व अपने कर्मो से इस लोक में जन्मे हैं, जन्मते हैं, और अपने कृत कर्मो का, अच्छे-बुरे का फल भोगते हैं। सत्त्व बिना जाने-बूझे अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धों की भाँति ईश्वर और उसके लोक पर विश्वास रखते हैं। कोई भी त्रैविध ब्राह्मणों में ऐसा नहीं हैं जिसने ब्रह्मा या

---

1. दीघनिकाय, 3/1

ईश्वर को अपनी आंखों से देखा हो। अतः ईश्वर नही है, न ही कोई सृष्टिकर्त्ता है। यह लोक अनादि और अनन्त तथा अनिर्मित है। यही बुद्ध का अनीश्वरवाद है।

निर्वाण :-

'निर्वाण' निर उपसर्ग पूर्वक वन या वान शब्द से निष्पन्न हुआ है। बौद्ध धर्म में 'वन' शब्द विशिष्ट महत्व रखता है। यहाँ 'वन' का अर्थ प्रायः 'तृष्णा' किया गया है और निर्वाण का अर्थ तृष्णा से निवृत्त होना अथवा तृष्णा का निरोध, क्षय, विराग ही निर्वाण है। निर्वाण का एक दूसरा अर्थ भी विद्वानों ने किया है- बुझना या शान्त होना। जैसे दीपक स्नेह (तेल) अथवा बत्ती के शेष न रहने पर शान्त हो जाता है वैसे ही इस सत्त्व के पंचस्कन्धों का निर्वाण प्राप्त होना, उपरम हो जाना, और राग, द्वेष एवं मोह से जो विमुकत हो जाता है, वही निर्वाण है। इस प्रकार वह परम शान्ति को प्राप्त करता है। बौद्ध धर्म में निर्वाण का काफी महत्व है। निर्वाण बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है बौद्ध धर्म की चरम परिणति निर्वाण में ही होती है। यद्यपि बौद्ध सम्प्रदायों में निर्वाण को लेकर काफी मतभेद है, फिर भी ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं है, जिसने निर्वाण के सिद्धान्त की चर्चा न की हो। निर्वाण की प्रथम व्युत्पत्ति स्थिरवाद, वैभाषिक और सौत्रान्तिक मत के अधिक समीप है और दूसरी कुछ आगे विकसित होकर महायान दर्शन की एक झलक प्रस्तुत करती है, जहाँ निर्वाण को शान्त और सुख-रूप माना गया है, फिर भी दोनों यानो में एकमात्र

अन्तिम उद्देश्य निर्वाण या परिनिर्वाण लाभ ही रहा है। यद्यपि महायानी केवल व्यक्तिगत निर्वाण की इच्छा नहीं रखता, वह समस्त सत्त्वों के निर्वाण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है।

अभिधर्मकोष भाष्य में निर्वाण को तृष्णा का सर्वथा प्रहाण, जयन्तीभाव, क्षय, निरोध व्युपशम, अस्तंगम इत्यादि बतलाया गया है।[1] वह दुःखों का अत्यन्त, अनुत्पाद, अप्रादुर्भाव बतलाया गया है। 'संयुक्त निकाय' में इसे शान्तिप्रणीत, समस्त उपाधियों का निरूद्ध होना, तृष्णाक्षय कहा गया है।[2] धम्मपद में निर्वाण को 'अमृतपद' कहा गया है। मज्झिम निकाय में इसे ही अनुतर योगक्खेम बतलाया गया है।[3] उदान में इसे असंस्कृत[4] एवं 'इतिवृत्तक' में अनुत्पन्न और अकृत बतलाया गया है।[5] आर्य निर्वाण का समाधि में साक्षात्कार करते हैं। इससे यह अनिर्वचनीय है। बुद्ध ने इसे निरोध, अव्याकृत किया है। 'उदान' में निर्वाण को 'अचलपद' कहा गया है। 'अंगुत्तर निकाय' में उदायी शारिपुत्र से पूछते हैं कि निर्वाण में सुख कैसे हैं? शारिपुत्र उत्तर में कहते हैं कि निर्वाण अमृत है। निर्वाण सुखावेदना का अभाव ही है, निर्वाण संज्ञावेदित निरोध के सदृश है।[6] 'महावग्ग' में भगवान स्वयं कहते हैं कि उन्होंने अमृत

---

1. अभिधर्मकोष भाष्य, पृ0 284
2. संयुक्त निकाय, 13/5
3. मज्झिम निकाय, 1/67
4. उदान -8/2
5. इतिवुत्तक-43
6. अंगुत्तर निकाय-1/149

का लाभ किया है और वे दूसरों के भी अमृत का द्वार खोलते हैं। शारिपुत्र और मौद्गलायन ने बौद्ध दीक्षा लेने के पूर्व परस्पर यह तय किया था कि हममें से जो भी पहले अमृत (निर्वाण) की खोज करेगा, वह एक दूसरे को जरूर बतलाएगा और निर्वाण प्राप्त होते ही शारिपुत्र का चेहरा प्रसन्न नजर आता है।

आचार्य नागसेन ने 'मिलिन्दप्रश्न' में निर्वाण का सूक्ष्म विवेचन किया है। आचार्य का कहना है कि तृष्णा का निरोध हो जाना निर्वाण है। पंचस्कन्धों का नि:शेषत: रूक जाना, उनका सर्वथा लुप्त हो जाना निर्वाण है। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार जलती हुई आग की लौ बुझने पर पुन: दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार निर्वाण-प्राप्त सत्त्व भी दिखाई नहीं पड़ता। निर्वाण में दु:ख लेशमात्र भी शेष नहीं रह पाता, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण महासमुद्र की तरह अनन्त सुख का भण्डार है, क्लेशों से अलिप्त है, शान्त है, न पैदा होना, न पुराना होना, न मरना और न आवागमन को ही प्राप्त करना है, निर्वाण दुर्विज्ञेय है। अच्छी राह पर चलकर संसार के सभी संस्कारों को अनित्य दु:ख तथा अनात्मरूप देखकर सत्त्व प्रज्ञालाभ से निर्वाण का साक्षात्कार तथा शान्ति-लाभ कर सकता है।

बौद्ध दर्शन की ज्ञान मीमांसा

दिगनाग के अनुसार ज्ञान के केवल दो ही साधन है, प्रत्यक्ष और अनुमान।[1] विज्ञप्तिमात्रता या स्वलक्षण प्रत्यक्ष का विषय है और सामान्य लक्षण या वस्तुएं अनुमान का।

प्रत्यक्ष:-

दिगनाग के अनुसार निर्विकल्प है और नाम, जाति, द्रव्य, गुण तथा क्रिया आदि बुद्धि-विकल्पों से असंपृक्त है।[2] चूँकि प्रत्यक्ष ऐसी अवस्था है जहां नाम, जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया आदि कोटियां जिनके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं, का अस्तित्व ही नहीं, अतः प्रत्यक्ष के विषय स्वलक्षण के सम्बन्ध में हम विध्यात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। हम जो कुछ भी वर्णन करते है वह सामान्य लक्षण है अर्थात स्वलक्षण का वह रूप जिसे हमने बुद्धि की कोटियों में आबद्ध कर लिया है।

अनुमान :

किसी ज्ञात वस्तु के आधार पर किसी अज्ञात वस्तु के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। अनुमान में तीन पद हेतु होते हैं-

---

1 प्रमाण समुच्चय, 1/2

2 प्रमाण समुच्चय 1,3

(क) पक्ष

(ख) हेतु या लिंग।

(ग) साध्य।

अनुमान के लिए यह आवश्यक है कि हेतु और साध्य के बीच सम्बन्ध हो और द्रष्टा को उस सम्बन्ध का पूर्वज्ञान हो। उदाहरणार्थ किसी स्थान पर धुआं देखकर अग्नि का अनुमान वहीं व्यक्ति लगा सकता है और यह जानता है कि जहाँ-जहाँ धुआं होगा वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होगी। वात्स्यायन के अनुसार किसी हेतु या लिंग के पूर्वज्ञान के आधार पर किसी विषय के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।[1]

भगवान बुद्ध तत्वमीमांसक थे, ज्ञान मीमांसक थे, या नैतिक आचार पर उपदेशक थे? यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है। अध्यात्म एवं शास्त्रीय प्रश्नों पर सर्वथा मौन धारण कर भगवान ने इस प्रश्न को अत्यन्त जटिल बना दिया है। बुद्ध देशना पर गहराई से विचारोपरान्त निष्कर्ष निकाला जाता है कि वास्तव में बुद्ध तत्वमीमांसक थे, ज्ञानमीमांसक भी थे तथा नैतिकता एवं सदाचार के उपदेशक भी थे।

---

1 न्याय भाष्य 1/1/13

भगवान बुद्ध ने भौतिकवादियों के विपरीत प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण को भी स्वीकार किया है। बौद्धमत में केवल कारण एवं कार्य के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, जबकि नैयायिक अन्य प्रकार के भी सतत साहचर्य के दृष्टान्तों को अनुमान के अन्तर्गत स्वीकार करता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार हम कार्य के कारण का अनुमान कर सकते हैं किन्तु न्याय दर्शन के अनुसार कारण से कार्य का अनुमान करने के अतिरिक्त लक्षणों के द्वारा उपलक्षित वस्तुओं की सत्ता का भी अनुमान कर सकते हैं। सींग रखने वाले सब पशुओं के खुर फटे होते हैं, यह एक आनुभविक सामान्य अनुमान है जो अनुभव की सीमा के अन्दर सही निकलते देखा गया है, यद्यपि यह नितान्त सत्य नहीं भी हो सकता है। जहाँ तक परम सत्य का प्रश्न है, भगवान ने जगत के आदि कारण एवं अन्तिम लक्ष्य पर विचार करने से निषेध किया है, उन्हें वास्तविक जीवन से ही तात्पर्य है, परम यथार्थ सत्ता से ही। बुद्ध की पद्धति दर्शन पद्धति न होकर एक प्रकार का यान या सवारी है, जिस पर बैठकर मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। बुद्ध अनुभव का विश्लेषण करते हैं उनके यथार्थ स्वरूप में भेद करते हैं, वे संसार की नित्यता अथवा अनित्यता के विवाद में नहीं फंसना चाहते हैं। भगवान अपने ध्यान को इस संसार तक ही सीमित रखते हैं और देवताओं को एकदम नहीं छूते, इसी प्रकार देवताओं से भी यही आशा करते हैं कि वे भी उनके ध्यान में बाधा नहीं डालेंगे।

भगवान ने किसी भी विषय का उन्होंने सर्वथा निराकरण नहीं किया अपितु पृष्ठभूमि को खुला छोड़ दिया जिस पर कोई भी सिद्धान्त सम्बन्धी पुनर्रचना की जा सकती है। अध्यात्मशास्त्र सम्बन्धी समस्याओं के प्रति वे सर्वथा उदासीन थे। उनका केवल यही मत था कि जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है जो अनिवर्चनीय है, उसका निर्वचन करने का प्रयास करना व्यर्थ है।

भगवान ने अध्यात्म विषयक समस्याओं पर मौन की स्थिति एवं अनिर्णय ने उनके शिष्यों के लिए खुला छोड़ दिया। इसीलिए परवर्ती बौद्ध आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोंण स्वतंत्र रूप से ज्ञान तथा यथार्थता की व्यापक व्याख्या की। नागसेन ने सर्वोपरि यथार्थ सत्ता एक निराधार धारणा बनाई वह ज्ञेय एवं अज्ञेय के बीच के भेद का खंडन करता है। वस्तुओं का ज्ञान उनकी दृष्टि में सापेक्ष नहीं रह जाता। यह यथार्थ एवं निरपेक्ष है, अनुभव से परे कुछ नहीं। यथार्थ एवं अनुभवजन्य उसके मत में एक समान हैं। सापेक्ष भी परमतत्व है। सच्ची अध्यात्म विद्या का सिद्धान्त वही है जो अनुभव का सिद्धान्त हो, न कि जो पृष्ठभूमि में अपने को पर्दे में छिपाए हो। आगे चलकर बौद्ध दर्शन की एक शाखा योगाचार विज्ञानवाद का जन्म होता है। योगाचार दर्शन के अनुसार मन से बाहर संवेदना को कोई स्रोत नहीं है। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय सब एक ही हैं, ज्ञान ही ज्ञान को देखता है। वस्तुतः भगवान का लक्ष्य मनुष्यों को दुःखों से छुटकारा दिलाना था, उन्होंने इस कटु सत्य का अनुभव किया कि मनुष्य दुःख

से पीड़ित है, इसे इस दुःख से मुक्ति मिलनी चाहिए। इसी क्रम में भगवान ने बताया कि दुःख का मूल कारण अज्ञान है। इस अज्ञान को दूर करके ज्ञान को प्राप्त करके दुःख से मुक्ति पायी जा सकती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए भगवान ने अष्टांगिक मार्ग बताए। इनका अनुकरण करने पर मुनष्य को ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी समस्त इच्छाएं, एषणाए, आस्रव, तृष्णा, राग, द्वेष, मोह निरोधित हो जाती है। वह जन्म-मृत्यु के भवचक्र से मुक्त हो जाता है, उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। यह निर्वाण ही परम सत्य है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर परम सत्य की अनुभूति होती है। कहा गया है कि निर्वाण ही नित्य एवं सत्य है, संसार अनित्य होने के कारण मिथ्या है। भगवान ने 'परम सत्य' पर विचार नहीं किया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे परम सत्य को नहीं जानते थे।

वस्तुतः भगवान जनसाधारण के अन्दर उन सत्यों की घोषणा नहीं करते थे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके मन विचलित न हो जायें। उनका विचार था कि परम सत्य को बताया नहीं जा सकता। यह तो अनुभव की वस्तु है। वास्तविक ज्ञान हो जाने पर इसका अनुभव किया जा सकता है। वास्तविक ज्ञान अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करके ही संभव है। इस प्रकार भगवान नें ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में अष्टांगिक मार्ग का निरूपण किया है। भगवान मनुष्य के ज्ञान की सीमाओं से परिचित थे और इसीलिए उन्होंने तर्क द्वारा जानने योग्य विषय एवं अज्ञेय विषय के मध्य परिधि की रेखा

खींच दी। भगवान ये अनुभव करते थे कि हमारी इन्द्रियां परिणत पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं और परिणत वस्तुएं वास्तव में सत् नहीं हैं। मनुष्य के मन की पहुँच से यथार्थ सत्ता हमेशा ही बाहर रहेगी क्योंकि मनुष्य स्वयं अविद्या की उपज है। ऐसा ज्ञान जो मैं और तू में भेद करता है, परम ज्ञान नहीं है। मनुष्य एवं सत्य के बीच ऐसा आचरण है जिसके बीच में प्रवेश करना कठिन है तो भी यह सत्य अथवा ज्ञान जिसे हम प्रत्यक्ष नहीं कर सकते या नहीं जान सकते, अयथार्थ नहीं है। ज्ञान के सम्बन्ध में मिलिन्द तथा नागसेन का यह संवाद उल्लेखनीय है-

"हे नागसेन, ज्ञान का निवास कहाँ है?"

"राजन् कहीं नहीं।"

" भगवन, तब फिर ज्ञान कोई वस्तु नहीं है।"

"राजन, वायु का निवास स्थान कहां है?"

"कहीं भी नहीं।"

"राजन तब फिर वायु नाम का कोई पदार्थ नहीं।"

अर्थात वायु पदार्थ है यह सत्य है। इसी प्रकार ज्ञान भी यथार्थ है, यद्यपि इसे तर्क के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जा सकता अथवा सिद्ध नहीं किया जा सकता। किन्तु इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए अनुमान द्वारा किसी बाह्य वस्तु का ज्ञान होता है। विज्ञानवादियों के अनुसार बाह्य वस्तु का अस्तित्व

ही नहीं, अतः उसके ज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता। उसके अनुसार अनुमान का विषय बुद्धि-कल्पित सामान्य लक्षण है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि हेतु और साध्य (धर्म-धर्मी-सम्बन्ध) सम्बन्ध पर आधारित अनुमान का किसी बाह्य वस्तु के अस्तित्व या अभाव से सम्बन्ध नहीं है।[1]

---

1 न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका पृ0 127

बौद्ध दर्शन की मूल्य मीमांसा

बौद्ध दर्शन नैतिकता पर सर्वाधिक बल देता है और नैतिकता के माध्यम से व्यक्ति के अंदर तथा समाज में मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार अणुओं से निर्मित इस संसार में चेतना प्रमुख है। बौद्ध दर्शन अवैदिक, अनात्मवादी, एवं अनीश्वरवादी होते हुए भी नैतिकतावादी, तर्कवादी एवं आदर्शवादी है। आत्मा क्षण-क्षण परिवर्तित चेतना की अविरल धारा है। प्रत्यक्ष एवं अनुमान को ज्ञान की साधन मानते हुए बौद्ध दार्शनिक अनुभवात्मक ज्ञान को आवश्यक बताते हैं और प्रत्येक अनुभव को विवेक की कसौटी पर रखते हैं। वे तर्कबुद्धि को प्राथमिकता देते हैं। शारीरिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को बौद्ध महत्वपूर्ण मानते हैं। भगवान ने जिस पवित्रता, सदाचार एवं सदाचार के आधार पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया और जिस सफलता से भगवान विश्व में महान गुरू, शान्ति गुरू, महान उपदेशक के रूप में पूज्य हो गए, उसकी आचार-आज्ञाएं भी उतनी महान थीं, भगवान को भिक्षुओं एवं गृहस्थों के 'पंचशील' सिद्धान्त की स्थापना की-

(क) प्राणातिपात विरति- जीव हत्या नहीं करे।

(ख) अदत्ता दान-विरति- अदेय वस्तु ग्रहण न करें।

(ग) मृषावाद-विरति- असत्य वचन न करें।

(घ) सुरा-मैरेय-प्रमाद-स्था-विरति- मद्यपान का सेवन न करें।

(ड.) काम-मिथ्याचार-विरति- व्यभिचार न करें।

भगवान ने कट्टर धार्मिकों के लिए अधोलिखित तीन नियमों का पालन करना परमावश्यक कहा-

(च) अकाल-भोजन-विरति- कुसमय भोजन को त्याग करें।

(छ) माल्य-गंध-विलोपन विरति- सुगंधित पदार्थों का त्याग करें।

(ज) उच्चासन शयन-विरति- भूमि पर शयन करें।

भगवान ने भिक्षुओं के लिए उक्त उपदेशों के अतिरिक्त निम्नलिखित दो अन्य नियमों का पालन करना आवश्यक बताया है-

(झ) नृत्यगीत-वादित-विरति- नृत्य-संगीत का त्याग।

(ट) जातरूप-रजत-प्रतिगृह विरति- सोना-चांदी का त्याग।

अतएव भिक्षुओं के लिए दशशील का पालन परमावश्यक है, परन्तु गृहस्थों के लिए 'पंचशील' का पालन करना आवश्यक बताया है। भगवान ने इन्द्रिय संयम को परमावश्यक कहा है। भगवान कहते हैं कि जिनके इन्द्रिय द्वार अगुप्त हैं, जो भोजन की मात्रा का विचार नहीं करता उसकी आत्मा तथा शरीर दोनों कष्ट पातें हैं। संप्रजन्य एवं स्मृति से आत्मरक्षा होती है, ये दोनों

द्वारपाल की भांति चित्त की गलत कर्मो से रक्षा करते हैं। भगवान ने तीन अकुशल वितर्क बताएं हैं-काम, व्यापाद और विहिंसा। इसका परित्याग करना चाहिए। तीन कुशल वितर्को का नैष्क्रम्य, अव्यापाद और अविहिंसा का संग्रह करना चाहिए। भगवान ने उपदेश दिया कि **"अक्रोध से क्रोध को जीतो, साधुता से असाधु को जीतो, कदर्य को दान से और मृषावादी को सत्य से जीतो।"** भगवान ने महामंगल सुत्त में कहा कि माता-पिता की सेवा, दान, अनवद्यकर्म, एवं धर्मचर्चा ये उत्तम मंगल हैं ब्रह्मचर्य, तप, आर्य सत्यों का दर्शन निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मंगल हैं। भगवान ने राग, द्वेष, मोह को अकुशल मूल कहा है। इनका प्रहाण होना चाहिए, क्योंकि राग के समान कोई अग्नि है, द्वेष के समान कोई कलि नहीं है। आचार सम्बन्धी महत्वपूर्ण नियमों का उल्लेख हमें "सिंगालोवाद सूत्र" में किया गया है। इस ग्रन्थ से तत्कालीन सामाजिक जीवन के आदर्श का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा और सांसारिक सुख देने के लिए माता-पिता की उत्सुक भावना, माता-पिता के पालन करने, उनका सत्कार करने एवं मृत्यु के उपरान्त आदरपूर्वक उनका स्मरण करने के लिए पुत्र की भक्तिपूर्ण अभिलाषा, शिष्य का अपने गुरू के प्रति सत्कार का व्यवहार और गुरू की शिष्य के लिए चिन्ता तथा प्रेम, पति का अपनी पत्नी के साथ सत्काम, दया, मान और

प्रीति के साथ व्यवहार, पत्नी का गृहस्थी के कार्यों में सावधान रहना, स्वामी-नौकर में, गृहस्थों-धार्मिकों एवं मित्रों के मध्य जो दया का भाव रखने का जो उपदेश या शिक्षाएं दी गयी हैं, वह सर्वोत्तम शिक्षाएं हैं, इन्हीं नियमों तथा सर्वोत्तम जन सुलभ शिक्षाओं के कारण तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म आध्यात्मिक, सामाजिक, तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना करने में समर्थ हुआ। भगवान ने उपासक को धर्म-श्रवण का उपदेश किया, उपवास-व्रत रखना चाहिए, भिक्षुओं का दान देने का उपदेश दिया, तथा चार तीर्थों कपिलवस्तु, बोधगया, सारनाथ तथा कुशीनारा की यात्रा करने का उपदेश दिया।
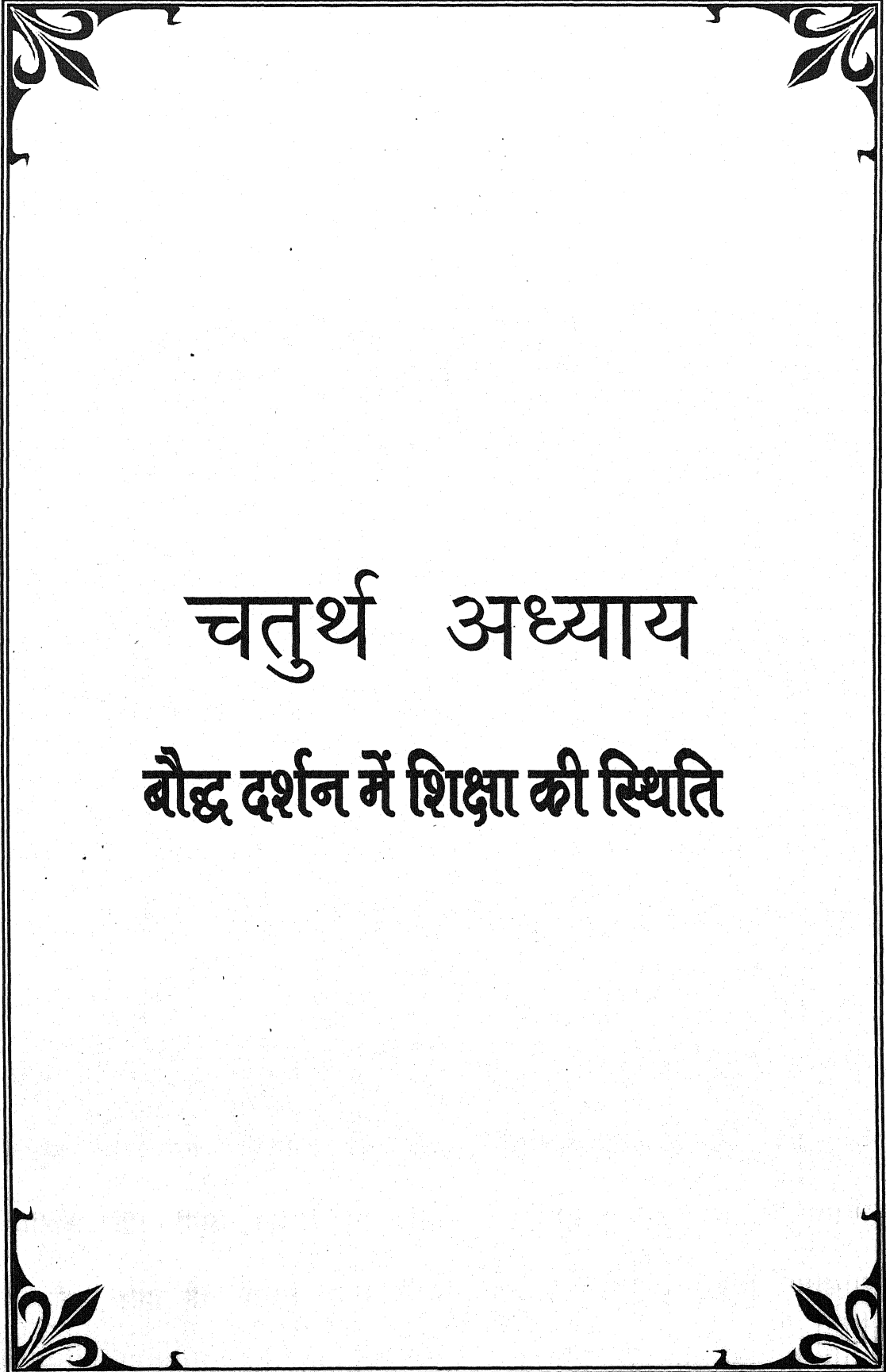
भगवान में भिक्षुओं को उपदेश दिया कि तृष्णा का विनाश किए बिना दु:ख का अत्यन्त निरोध नहीं होता, तृष्णा का विनाश करने से विशुद्धि होती है, इस विशुद्धि के अधिगम का उपाय बताते हुए 'संयुक्त-निकाय' में भगवान ने कहा-**"जो मनुष्य शील में प्रतिष्ठित है, समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, वह प्रभावान् और वीर्यवान भिक्षु इस तृष्णा जटा का नाश करता है।"**

भगवान कहते हैं कि सर्वपाप से विरित ही शील है, जब योगी प्रज्ञा से देखता है कि संस्कार अनित्य तथा दु:ख है, सर्वधर्म अनात्म है, तब दु:ख का निरोध होता है। प्रज्ञा, शील तथा समाधि को बौद्धों ने 'शिक्षात्रय' कहा है।

यह बौद्ध धर्म-दर्शन का मूलाधार है तथा यही विशुद्धि का भी मार्ग है। जो भिक्षु शिक्षापदों की रक्षा करता है, जो आचार-गोचर सम्पन्न है अर्थात जो मनसा, वाचा तथा कर्मणा का अनाचार नहीं करता और योग क्षेम चाहने वाले कुलों का आसेवन करता है, जिसकी इन्द्रियां संवृत्त हैं जो अजीव के लिए पाप धर्मों का आश्रय नहीं लेता अर्थात जिसका आजीव परिशुद्ध है, जो परिष्कारों का उपयोग प्रयोजनानुसार करता है जो शीतोष्ण से शरीर रक्षा के लिए और लज्जा के लिए चीर धारण करता है, भिक्षु अणुमात्र भी पाप से डरता है। शरीर को विभूषित करने के लिए नहीं, जो भिक्षु शरीर की स्थिति के लिए आहार करता है, उस भिक्षु का शील परिपूर्ण माना गया है, इस प्रकार शील सम्पन्न होकर ही समाधि की भावना करनी चाहिए। शील सम्पन्न सुभावित चित्त में राग को अवकाश नहीं मिलता है। भगवान हमें आन्तरिक द्वन्द्व में से, जो मानव जीवन का एक विशिष्ट लक्षण है, निकालने का मार्ग दर्शातें हैं। भगवान के उपदेशों का लक्ष्य दुःख से छुटकारा पाना है। नैतिक जीवन का उद्देश्य इस विस्तृत असाधु जीवन से बच निकलना है। बुद्ध के अनुसार अपने आपको विनष्ट करना ही मोक्ष है। भगवान ने निर्वाण को उच्चतम लक्ष्य कहा एवं उपदेशना दी कि आचरण की ऐसी सब विधियां जो हमें निश्चित रूप में निर्वाण की ओर ले जाती हैं, शुभ है और उनके विपरीत

सभी कर्म अशुभ हैं अर्थात शुभ कर्म वे हैं जो वासनाओं, इच्छाओं एवं अहं की भ्रान्त भावनाओं के ऊपर हमें विजय प्राप्त करने का मार्ग दर्शन करते हैं जबकि अशुभ कर्म वे हैं जो हमें दु:खदायी दण्डभोग की ओर ले जाते हैं। शुभ कर्म लोक कल्याणकारी होते हैं, जबकि अशुभ कर्म स्वार्थपरता को जन्म देते हैं। इस प्रकार भगवान के उपदेशों में लोकमंगल भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वस्तुतः भगवान के इसी पवित्र संकल्प ने बौद्ध दर्शन को सर्वव्यापी एवं सर्वग्राह्य बना दिया।

****

चतुर्थ अध्याय

बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है उसकी बुद्धि और प्रज्ञा समृद्ध और प्रांजल होती है। कोई मनुष्य अन्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है, जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इसीलिए विद्याहीन मनुष्य को पशुवत् कहा गया है। विद्या से मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है। इसके बिना उसका जीवन निरर्थक और सारहीन रहता है। इसके संयोग से बुद्धि प्रखर, बोध-क्षमता विकसित और विवेक संपुष्ट होता है। यह ऐसे मार्ग का दिग्दर्शन करती है कि मनुष्य पथभ्रष्ट होने से बच जाता है तथा सही मार्ग का अनुसरण करके अपना इहलौकिक और पारलौकिक जीवन सुखमय बनाता है। इस प्रकार शिक्षा का आदर्शात्मक विनियोग मनुष्य को क्रियाशील और सन्नद्ध बनाता है, जिससे वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है। आत्मज्ञान के साथ-साथ जगत का ज्ञान भी उसके लिए अपेक्षित माना गया। मनुष्य का आत्मिक विकास, सांसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही संभव रही है। शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध प्रज्ञासम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होगा, बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर पर चलकर विकसित होता है। प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा मे पर्याप्त शोधात्मक

प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। सामान्यतः सभी भारतीय दर्शन का विकास किसी आत्मिक अशांति से हुआ है। बौद्ध दर्शन के लिए यह तथ्य और भी सत्य के निकट है, क्योंकि बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण ही उनकी आंतरिक अशांति का परिणाम था। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव कर बुद्ध को अनुभव हुआ कि मनुष्य के दुख का सर्वाधिक कारण मृत्यु की कल्पना है। यदि यह दुख की समाप्त होता है तो सम्भवतः सारे दुखों का अंत हो जाएगा, क्योंकि मृत्यु ही जीवन का कारण है। भारतीय दर्शनों में शिक्षा का परमोद्देश्य दुखों से मुक्ति दिलवाना है परन्तु बौद्ध दर्शन विशेषकर दुखवादी दर्शन है। बौद्ध दर्शन में दुःख, दुःख का कारण तथा दूर करने हेतु उपदेश दिए गये। बौद्ध दर्शन में दुख का प्रमुख कारण अज्ञानता माना। अतः बौद्ध दर्शन में शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य अज्ञानता की समाप्ति है, जिससे दुख का अन्त हो सके। बौद्ध दर्शन के अनुसार जन्म-जरा-मरण से छुटकारा पाने से ही दुःख समाप्त हो सकते हैं। सुख-दुःख क्रमिक हैं अर्थात दुःख के बाद सुख एवं सुख के बाद दुःख आते रहते हैं। वर्तमान सुख वास्तव में आगमित दुःख की अभिव्यक्ति मात्र है। सांसरिक सुखों में सर्वथा दुःख व्याप्त है। भगवान बुद्ध ने सांसारिक दुःखों के सम्बन्ध में चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। ये चार आर्य सत्य हैं-

1. दुःख

2. दुःख समुदाय

3. दुःख निरोध

4. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा

संसार में व्याप्त प्रत्येक प्रकार के दुःख का सामूहिक नाम है-'जरामरण' जरामरण चक्र के बारह क्रम बताए गए हैं-

1.	जरा-मरण	2.	जाति	3.	भव
4.	उपादान	5.	तृष्णा	6.	वेदना
7.	स्पर्श	8.	षडायटन	9.	नामरूप
10.	विज्ञान	11.	संस्कार	12.	विद्या

महात्मा बुद्ध ने 'मध्यर्म मार्ग' (मध्यम प्रतिपदा) का उपदेश देते हुए कहा कि मनुष्य को सभी प्रकार के आकर्षण और काया क्लेश से बचना चाहिए, अर्थात इन दोनों अतियों के बीच के मार्ग से दुःख निरोध हेतु प्रयास करना चाहिए। इन सांसारिक दुःखों से मुक्त बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग की बात कही ये साधन हैं-

1.	सम्यक् दृष्टि	2.	सम्यक् संकल्प
3.	सम्यक् वाणी	4.	सम्यक् कर्मान्त
5.	सम्यक् आजीव	6.	सम्यक् व्यायाम
7.	सम्यक् स्मृति	8.	सम्यक् समाधि

बुद्ध के अनुसार इन अष्टांगिक मार्गो का पालन करने से मनुष्य की तृष्णा नष्ट हो जाती है और उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म ने 'पंच स्कन्धों' की अवधारणा दी, इसके अनुसार यह जगत पाँच स्कन्धों रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और वेदना से निर्मित हैं, अतः इसका अन्त किया जा सकता है जो अविद्या को दूर किए जाने पर ही संभव है। अविद्या के दूर होने पर शिक्षा का प्रभाव बढ़ता है। शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थियों को इस प्रकार शिक्षा प्रदान कराना है जिससे -

1. शिक्षार्थी का का मन सदैव अच्छे विचारोंसे परिपूर्ण रहे।
2. शिक्षार्थी के समस्त बुरे विचार नष्ट हो जाएं।
3. शिक्षार्थी के मन में बुरे विचार प्रविष्ट न हो।
4. शिक्षार्थी का मन सदैव शुभ विचार धारण करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।
5. शिक्षार्थी का मन सदैव शिक्षा, दर्शन आदि के क्षेत्रों में नवीन अनुसंधान की ओर प्रयत्नशील रहें।

भगवान बुद्ध के 'महापरिनिर्वाण' के पश्चात बौद्ध धर्म एवं दर्शन में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। बौद्ध धर्म कई सम्प्रदायों एवं अनेक शाखाओं में विभक्त हो गया। जिससे बौद्ध धर्म दर्शन विभिन्न प्रकार के दार्शनिक

दृष्टिकोंणों का उद्भव हुआ। हीनयान तो बौद्ध दर्शन में परिवर्तन विरोधी था, वहीं महायान परिवर्तनशील। महायान ने संघ के नियमों में अनुकूल शिथिलता को जन्म दिया तथा व्यवहारिकता को प्रधानता दी। बौद्ध शिक्षा प्रणाली मे मूलभूत परिवर्तन हुए। पाठ्यक्रम में दर्शन, साहित्य, आयुर्वेद जैसे लौकिक विषयों को स्थान दिया गया। लौकिक उन्नति को भी आध्यात्मिक विकास का अंग माना गया। इस प्रकार बौद्ध दर्शन ने शिक्षा के नवीन तथा व्यावहारिक उद्देश्य निर्धारित किये। शिक्षार्थी के लिए यह उपयोग अत्यन्त उपयोग थे, आज भी शिक्षा के वर्तमान उद्देश्य उक्त उद्देश्यों से प्रेरित है। अनुसंधान कर्ता संक्षेप में शिक्षा के निम्न उद्देश्यों को प्रस्तुत करता है–

1. चरित्र निर्माण–

बौद्ध शिक्षा में चरित्र निर्माण प्रमुख उद्देश्य माना जाता था। आचार्य का मुख्य कार्य था, नैतिक नियमों की स्थापना करके शिक्षार्थी का चरित्र निर्माण करना। चरित्र निर्माण करने के लिए आवश्यक नियमों का निर्धारण किया गया है। आचार्य अपने शिक्षार्थियों के लिए यह सुनिश्चित करता था कि कौन सी आदतें ग्राह्य हैं और कौन सी आदतें त्याज्य। किस कार्य में शिक्षार्थी को तत्परता दिखानी चाहिए तथा किस कार्य की उपेक्षा। शिक्षार्थी के दैनिक जीवन के क्रियाकलाप भी अचार्य द्वारा निर्धारित किये जाते थे कि शिक्षार्थी को कब

सोना है? कब जागना है? कब कैसे और क्या भोजन करना लाभदायक है या हानिकारक। शिक्षार्थी को मैत्री किससे करनी चाहिए तथा किन स्थानों पर भ्रमण करना चाहिए।[1] मठों, विहारों तथा शिक्षा केन्द्रों का वातावरण छात्रों के चरित्र निर्माण में सहायक सिद्ध होता था। मिलिन्दपन्हों ने आचार्य को शिष्य के 'मानस पिता' की संज्ञा दी जिसका चरित्रनिर्माण करना उसका नैतिक कर्तव्य था। एक चरित्रवान शिक्षार्थी ही देश एवं समाज का भविष्य था।

2. व्यक्तितत्व विकास–

बौद्ध शिक्षा में शिक्षा का द्वितीय मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थी का व्यक्तितत्व विकास करना था। आत्म-विश्वास, आत्मसम्मान, आत्म-संयम तथा आत्म निर्भरता का विकास ही व्यक्तितत्व विकास कहलाता था। भविष्य की अनिश्चितता से आत्म-विश्वास में कमजोरी आती है परन्तु तत्कालीन बौद्ध शिक्षा में पाठ्यक्रम व्यवसायपरक था अतएव छात्रों में भविष्य की अनिश्चितता नहीं थी। इस कारण छात्रों का भविष्य उज्जवल था। इससे शिक्षार्थी का आत्म सम्मान तथा आत्म निर्भरता में वृद्धि होती थी। आत्म संयम भी शिक्षार्थी के व्यक्तितत्व विकास में सहायक था। मठों, विहारों एवं विश्वविद्यालयों में सादगी पर पूर्णतया बल दिया जाता था। शिक्षार्थियों को साधारण वस्त्रों का प्रयोग करना होता है तथा सात्विक भोजन दिया जाता था। मर्यादित भोजन मनोरंजन की प्रधानता थी। कह

---

1 मिलिन्दपन्ह- भाग 1 पृष्ठ 142

सकते है कि बौद्ध शिक्षा 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त पर आधारित थी। इस प्रकार की शिक्षा दीक्षा से छात्र का व्यक्तितत्व विकास उज्जवलतम होता था तथा समाज में उसकी 'पूर्णव्यक्ति' के रूप में मान्यता थी।

3. संस्कृति–सरक्षण–

सांस्कृतिक परम्पराओं और संस्कृति का संरक्षण बौद्ध शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। बौद्ध शिक्षा ने भगवान बुद्ध के उपदेश एवं सांस्कृतिक धरोहर को अपने दर्शन में, अपनी शिक्षा में सर्वाधिक महत्व दिया। अध्ययन को सर्वाधिक महत्व दिया गया। भिक्षुगण स्वयं अध्ययन करते थे तथा जीवन में उसका परिपालन करते थे तथा दूसरों को भी उपने ज्ञान रूपी धारा से शिक्षित एवं दीक्षित करते थे। यदि कोई समाज एवं राष्ट्र अपनी संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्द्धन नहीं कर सकता तो उसे शिक्षित कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। शिक्षा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की वृद्धि का प्रमुख साधन है। यदि शिक्षा उदीयमान संतति को उत्तम प्राचीन परम्पराओं को स्वीकार कर तदनुरूप आचरण करना नहीं सिखाती तो अपने उद्देश्यों में पूर्णतया निष्फल है। अतएव बौद्ध शिक्षा ने संस्कृति और परम्परा को अपनी शिक्षा–दीक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

4. धार्मिकता का विकास–

शिक्षार्थी के मानस में धार्मिकता को उदयित करना बौद्ध शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। भगवान बुद्ध का आदेश था कि प्रत्येक भिक्षु-भिक्षुणी या उपासक को विनय एवं धम्म की सम्यक शिक्षा दी जाए। बौद्ध शिक्षा प्रबज्या के समय शिक्षार्थी को **'धम्मं शरणं गच्छामि'** की प्रतिज्ञा करना अनिवार्य था। धार्मिक उत्सव, धार्मिक सभाओं का आयोजन, वाद-विवाद, तथा नित्य संध्या-पूजन से शिक्षार्थियों में धार्मिकता का जागरण हो जाता था। धार्मिक जागरण से छात्र लौकिक तथा पारलौकिक जीवन की वास्तविकता को जान जाते थे। भिक्षु तथा पुरोहित ही प्रायः आचार्य होते थे। इसी कारण शिक्षार्थी के मन-मस्तिष्क में धार्मिकता का उदय स्वतः ही हो जाता है। धार्मिकता के विकास से शिक्षार्थी का चतुर्दिक विकास होता है। इसी कारण बौद्ध शिक्षा में शिक्षार्थी का धार्मिक विकास करना परमोद्देश्य माना गया है।

5. सर्वांगीण-विकास-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसके समस्त क्रिया कलाप समाज के आधार पर होते हैं, तथा सामाजिक गतिविधियों एवं परिस्थितियों से संचालित होते हैं। अतः बौद्ध शिक्षा में वैयक्तिक उन्नति के साथ-साथ सामाजिक कुशलता का भी ध्यान रखा जाता था। मठों, विहारों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षार्थी को उनके सामाजिक कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का बोध कराया जाता

था। दीक्षान्त भाषण में सामाजिक कर्तव्यों के पालन पर विशेष रूप से बल दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा में मानसिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा का समन्वित रूप है, अतः बौद्ध शिक्षा में मनुष्य के व्यक्तितत्व के विभिन्न पक्षों के समन्वित विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना गया।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

बौद्ध धर्म में दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा को प्रमुखता दी गई है। बौद्ध धर्म का आधार संसार से दुख का निरोध करना है, मनुष्य को जरा-मरण के बंधन से मुक्ति दिलाना था। भगवान बुद्ध ने कहा था कि संसार दुख से परिपूर्ण है, संसार का परित्याग करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। इसलिए बौद्ध शिक्षा में निर्वाण आधारित शिक्षा का जन्म हुआ। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षु-भिक्षुणियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया, परन्तु जब बौद्ध धर्म में जन साधारण को शिक्षा-दीक्षा दी जाने लगी तो इनकी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भिक, वैदिक शिक्षा प्रणाली की भांति हो गयी। दोनों पद्धतियों का आदर्श एवं शिक्षा-दीक्षा के तरीके समान हो गए। बौद्ध धर्म में प्रत्येक उपासक को अनिवार्यत: विनय तथा धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बौद्ध विहारों एवं मठों ने शिक्षा का कार्य अपने हाथ में ले लिया और उसका विकास किया। बौद्ध संघ में प्रविष्टि प्राप्ति हेतु दो संस्कार आवश्यक थे-

1. **पबज्जा संस्कार**
2. **उपसम्पदा संस्कार**

पबज्जा संस्कार से उपासकत्व का आरम्भ होता है। हिन्दू धर्म के उपनयन संस्कार की भाँति पबज्जा संस्कार के साथ व्यक्ति का आध्यात्मिक

जन्म माना जाता है।[1] पबज्जा संस्कार के लिए उम्र निश्चित की गयी थी परन्तु कालान्तर में यह घटती–बढ़ती रही। बुद्ध ने 5 वर्ष की अवस्था से ही शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था।[2] सामान्यतः पबज्जा संस्कार हेतु आयु 7 वर्ष प्रचलित थी। ह्वेनसांग ने तत्कालीन समय में प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ 7 वर्ष से माना है,[3] परन्तु इत्सिंग के समय प्रारम्भिक शिक्षा प्रायः छठे वर्ष थी।[4] पबज्जा संस्कार हेतु संरक्षक की आज्ञा परमावश्यक थी। पबज्जा संस्कार के बाद शिक्षार्थी उपासक के नाम से जाना जाता है। उपासक काल के अन्त में उपसम्पदा संस्कार होता है। उपसम्पदा के समय उपासक की उम्र 20 वर्ष से कम नहीं होना चाहिए। ऋणी, तथा अशक्त रोगी को दीक्षा देने पर रोक थी। बौद्ध धर्म में प्रवेश हेतु वर्ग का कोई बंधन नहीं था, कोई भी मनुष्य बुद्ध संघ तथा धम्म में विश्वास प्रकट कर बौद्ध संघ में प्रवेश कर सकता था तथा किसी विद्वान भिक्षु के आचार्यत्व को स्वीकार कर संघ के नियमों का पालन करता था। बौद्धकालीन शिक्षा को निम्नलिखित भागों में विभक्त कर अनुसंधानकर्ता पाठ्यक्रम पर प्रकाश डाल रहा है।

---

1 मज्झिम निकायः भाग 2 पृष्ठ 103

2 ललित विस्तर-बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, 1958 अध्याय 10

3 वाटर्स- आन ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग 1 पृष्ठ 154-55

4 इत्सिंग रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रेक्टाइज्ड इन इण्डिया एण्ड दि मलय आर्किमिलैगो तथा बसु का अंग्रेजी अनुवाद, बुद्धिस्ट प्रैक्टिसेस इन इण्डिया पृ0 171-72

1. प्रारम्भिक शिक्षा–

बौद्ध काल में प्रारम्भिक शिक्षा के पर्याप्त प्रमाण का अभाव है। चीनी यात्रियों ने प्रारम्भिक शिक्षा का कोई उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः समकालीन समाज में शिक्षा–दीक्षा के क्षेत्र में पतन हो गय था। बौद्ध धर्म ने शिक्षा–दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। महायान के उदय के साथ–साथ बौद्ध विहार, मठों एवं विश्वविद्यालयों ने साधारण जनता को भी शिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। चीनी यात्रियों ने प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन नहीं किया, इसका कारण सम्भवतः उनका इसमें रूचि न लेना प्रतीत होता है, क्योंकि उच्च शिक्षा का प्रादुर्भाव प्रारम्भिक शिक्षा से ही होता है। चीनी यात्रियों ने उच्च शिक्षा का उत्कृष्ट वर्णन किया था तथा विदेशियों का उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए भारत आगमन के बारे में वर्णन किया था स्वयं कुछ चीनी यात्रियों ने बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा प्राप्त की थी। इत्सिंग ने जल, भोजन, आदि से भृत्यों की भांति आचार्यो की सेवा करने वाले शिक्षार्थियों का वर्णन किया है। संभवतः ये प्रारम्भिक शिक्षा के साधारण विद्यार्थी ही थे।[1] अतः हम कह सकते हें कि प्रारम्भिक शिक्षा बौद्ध विहारों में जहां उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी, भिक्षुओं द्वारा ही प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करते है। पबज्जा संस्कार के पश्चात् प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ होती थी, इसमें लकड़ी के तख्ती पर लिखने

---

1 इत्सिंग– पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 142, 105–06

का अभ्यास कराया जाता था।[1] अजंता गुफाओं में बालकों को शिक्षा प्रदान करते हुए आचार्य को प्रदर्शित किया गया है। आचार्य ऊँचे आसन अर्थात चौकी पर विराजमान हैं, उनके हाथ में दण्ड है, बालक हाथ में पट्टी लिए हुए शिक्षारत है।[2] ईसा के प्रारम्भ में **'अक्खरिका'** नामक खेल का उल्लेख मिलता है। इस खेल मे बालक ने आकाश में या सहपाठी के पीठ पर उंगली से कोई अक्षर लिखने का संकेत करता था तथा बालक से पूछता था कि कौन सा अक्षर है, ललित विस्तर से भी ज्ञात होता है कि आचार्य कक्षा के बड़े पट्ट पर कोई अक्षर लिखता था, बालक उस अक्षर का नाम पुकारते थे और पट्ट पर या तख्ती पर या भूमि पर वैसी ही आकृति बनाते थे।[3] पेशावर संग्रहालय में बुद्ध की एक ऐसी मूर्ति है जिसमें वे एक चौकोर तख्ती पर लिखने में व्यस्त हैं।[4] इससे यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक शिक्षा में अक्षर ज्ञान कराने हेतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली में एक निश्चित व्यवस्था थी।[5] बालकों को वैज्ञानिक तरीके से खेल-खेल में अक्षरों का ज्ञान एवं अभ्यास कराया जाता था। संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म होने के पश्चात उच्च्च शिक्षा के लिए

---

1 एo एसo अल्तेकर- एजुकेशन इन एशेन्ट इण्डिया, पृष्ठ 177

2 कल्याण- शिक्षांक विशेषांक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1988, पृष्ठ 265

3 ललित विस्तर पूवोक्त अध्याय 10

4 जर्नल- आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट 1903 पृष्ठ 246-47

5. गीतादेवी-उत्तर भारत में शिक्षा व्यवस्था 600-1200 ई0 (वी0पी0 श्रीवास्तव, इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1982 पृष्ठ 25

मठों में प्रवेश के समय बालक को लेखन और गणना का ज्ञान रहता था। अक्षर ज्ञान के स्थान को **'लिपिशाला'** और अक्षर सिखाने वाले आचार्य को **'द्वारकाचार्य'** कहते थे।[1] दिव्यादान में **'लेखशाला'** तथा लिखने के लिए **'तुला'** आदि का वर्णन है।[2] कटाहक जातक में एक धनी वर्ग के बालक का उल्लेख है जो प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठशाला में जाता था और उसके साथ उसका नौकर तख्ती लेकर जाता है। स्पष्ट है कि बालक तख्ती पर लिपि का अभ्यास करते थे तथा अक्षरों को उच्च स्तर में दोहराते भी थे। बौद्ध मठों में जो छात्र दीक्षित होते थे उन्हें विशेष रूप से प्रारम्भिक शिक्षा की सभी सुविधाएं प्राप्त रहती थीं।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम में अक्षरज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है तथा अक्षरज्ञान कराने के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम अधिक विस्तृत नहीं था। सर्वप्रथम बालक को वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था। बालकों की शिखा 'सिद्धमंचग' नामक पुस्तक से आरम्भ की जाती थी। बालक सर्वप्रथम इस पुस्तक का अभ्यास करते थे। 'सिद्धमंचग' का अर्थ है "पूर्णता" या 'दक्षता'। इस प्रकार बालकों को वर्णमाला के ज्ञान में 'सिद्धमंचग' पुस्तक अत्यन्त

---

1 ललित विस्तर-पूर्वोक्त अध्याय 10

2 दिव्यादान-काउवेल द्वारा सम्पादित, कैम्ब्रिज, 1986, पृष्ठ 532

सहायक थी। ह्वेनसांग ने प्रारम्भिक शिक्षा का विवरण देते हुए लिखा है कि बालक पहले वर्णमाला के अक्षरों को सीखता था।[1] अक्षर ज्ञान में पूर्णता के पश्चात निम्नलिखित पांच विद्याओं का अध्ययन कराया जाता था–

1. **शब्द विद्या**– इसे व्याकरण की संज्ञा दी जाती थी।

2. **शिल्पासन विद्या**– इसके अन्तर्गत शिल्प तथा कला का ज्ञान कराया जाता था।

3. **चिकित्सा विद्या:** इसके अन्तर्गत चिकित्सा का प्राथमिक ज्ञान कराया जाता था।

4. **अध्यात्म विद्या:** इस विद्या के अन्तर्गत दर्शन, धर्म, संस्कृति आदि की शिक्षा दी जाती थी।[2]

5. **हेतु विद्या:** इस विद्या के अन्तर्ग शिक्षार्थी को न्यायशास्त्र तथा तर्कशास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान दिया जाता था।

हेतु विद्या के अन्तर्गत ''न्याय द्वार तारक शास्त्र'' पुस्तक का अध्ययन किया जाता था जो सुप्रसिद्ध विद्यान नागार्जुन द्वारा रचित थी। इत्सिंग ने इस पुस्तक का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। बालकों के लिए शिल्प,

---

1 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 154

2 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 155

व्याकरण तथा चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था। बालकों को गणना का ज्ञान अनिवार्य था। मिलिन्दपन्हों में अंगुलियों के जोड़ों द्वारा गणना-ज्ञान दिए जाने का उल्लेख है।[1] इत्सिंग ने बच्चों की शिक्षा का आरम्भ 'सिद्धिरस्तु' से किए जाने का उल्लेख किया गया है। इस पुस्तक का अध्ययन शिक्षार्थी छः माह में पूर्ण करते थे, तत्पश्चात व्याकरण का अध्ययन करते थे, जिसके लिए जयादित्य वामन की पुस्तक 'कुशिकावृत्ति' का उपयोग किया जाता था। यह पुस्तक पाणिनीकृत 'अष्टाध्यायी' की टीका थी।[2] बौद्ध शिक्षा प्रणाली के प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विस्तृत वर्णन 'ललित विस्तर' में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के दसवें तथा बारहवें परिवर्त में शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ललित विस्तर में उल्लेखित है कि आचार्य ने कुमार बोधिसत्व को 64 प्रकार की अक्षर दृश्य रूपी लिपियों का ज्ञान कराया था। लिपि ज्ञान के लिए चन्दन काष्ठ के लिपिफलक (स्लेट) का प्रयोग किया गया था, जिसकी चारों किनारियां (फ्रेम) दिव्य सुवर्ण एवं मणिरत्न से युक्त थी। ललित विस्तर में हमें 64 लिपियां प्राप्त होती हैं। जो निम्नलिखित हैं-

1.	ब्राह्मी	2.	खरोजी	3.	पुष्करसारि	4.	अंग
5.	बंग	6.	मगध	7.	मंगल्य	8.	अंगुलीय

---

1 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 175-77

2 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 177-79

9. शकारि 10. ब्रह्मवालि 11. पारूष्य 12. द्रविड़

13. किराप 14. दाक्षिण्य 15. उग्र 16. संख्या

17. अनुलोम 18. अवमूर्द्ध 19. दरद 20. खाण्य

21. उत्क्षेपावृत 22. निक्षेपावृत 23. पादलिखित 24. द्विरूत्तर

25. सर्वभूतरूत गृहस्थी 26. गगन प्रेक्षणी 27. मध्याहारिणी

28. धारिणी प्रेक्षिणी 29. मध्याक्षर विस्तर 30. देव 31. पुष्प

32. यक्ष 33. नाग 34. महोरग 35. गरूड़ 36. असुर

37. गन्धर्व 38. मृगचक्र 39. किन्नर 40. भीगदेव

41. वाय सरूत 42. अपरगोड़ानी 43. अन्तरिक्ष देव 44. पूर्ण विदेह

45. उत्तर कुरूदीप 46. निक्षेप 47. विक्षेप 48. प्रक्षेप 49. चीन

50. लून 51. हूण 52. वज्र 53. सागर 54. लेखन्प्रतिलेख

55. उत्क्षेपावृत्त 56. पादलिखित 57. दिरूत्तर पद सन्धि

58. पावद्वशोत्तर पद सन्धि 59. शास्त्रावर्त 60. अनुद्रुत

61. सर्वरक्त संग्रहणी 62. विद्यानुलोमाविमिश्रित 63. ऋपितपस्त

64. सर्वोषधि निष्यन्द[1]

उक्त लिपिशाला में बोधिसत्व के साथ 10,000 छात्र लिपि ज्ञान प्राप्त कर रहे थे, ये सभी बोधिसत्व के साथ मिलकर अक्षर मातृ का वाचन करते

---

1 ललित विस्तर– अध्याय 10

थे। उन्हें प्रत्येक अक्षर का वाच्य अर्थ बौद्ध दार्शनिक तत्वों के उपस्थापन के माध्यम से समझाया जाता था। जो निम्नलिखित है-

अ	से	अनित्य	आ	से	आत्मपरहित
इ	से	इन्द्रियवैकल्य	ई	से	ईतिबहुल
उ	से	उपद्रव बहुल	ऊ	से	ऊतरात्वजगत
ए	से	एषणासमुत्थानदोष	ऐ	से	ऐर्यायथश्रेयस
ओ	से	ओद्योत्तर	औ	से	औपपादुक
अं	से	अमन्औद्योत्पत्ति	अः	से	अस्तंगमन
क	से	कर्म विषाकावतार	ख	से	खसम सर्वधर्म
ग	से	गम्भीर धर्म प्रतीत्य समुत्पादावतार			
घ	से	घन पटला विद्या मोहान्धकार विद्यतन			
ड.	से	अंग विशुद्धि	च	से	चतुरार्य सत्य
छ	से	छन्दरागप्रहाण	ज	से	जरा-मरण-समतिक्रमण
झ	से	झष ध्वज बलनिग्रहण	ञ	से	ञापन
ट	से	पटोपच्छेदन	ठ	से	ठपनीय प्रश्न

ड	से	डमरभार निग्रहण	ढ	से	मीढ़ विषय
ण	से	रेणुक्लेश	त	से	तथागत सम्भेद
थ	से	थामक्लबैशारथ	द	से	दानदम संयम सौरम्य
ध	से	सप्त विद्याधन	न	से	नामरूपपरिक्षा
प	से	परमार्थ	फ	से	फलप्राप्ति साक्षा क्रिया
ब	से	बंधनमोक्ष	भ	से	भवविभव
म	से	मदमानोपशमन्	य	से	यथा बुद्ध धर्म प्रतिवेध
र	से	रत्परति परमार्थ रति	ल	से	लताछेदन
व	से	वरयान	श	से	शमथ विपण्यना
ष	से	षड़ायतन निग्रहणामिक्ष-ज्ञानावाप्ति			
स	से	सर्वज्ञ ज्ञानाभि सम्बोधन	ह	से	हतक्लेश विराग
क्ष	से	क्षण पर्यान्तामिलाप्य सर्वधर्म।[1]			

उक्त मातृका वर्ग में ऋ, लृ, त्र एवं ज्ञ को नहीं लिया गया है। सम्भवत: ये चारों वर्ण पालि की मातृका में सम्मिलित नहीं थे।

---

1 ललित विस्तर- अध्याय 10

उक्त शिक्षा विधि में निर्धारित अक्षर ज्ञान की प्रक्रिया स्पष्ट करती है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली का स्तर उच्चतर था। साथ ही शिक्षार्थी का मस्तिष्क भी अत्यधिक विकसित था। शिक्षार्थी को बचपन में ही प्रारम्भिक शिक्षा के समय में ही उच्च स्तर का ज्ञान प्रदान कर दिया जाता था तथा शिक्षार्थी भी इस ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमतायुक्त होते थे। वस्तुतः बौद्ध शिक्षा प्रणाली में प्रारम्भिक शिक्षा के समय में ही उच्च स्तर का ज्ञान प्रदान कर दिया जाता था तथा शिक्षार्थी भी इस ज्ञान को ग्रहण करने के लिए उच्च स्तर की मनोवैज्ञानिक भाषा एवं लिपियों का प्रयोग किया जाता था, जिससे शिक्षार्थी प्रारम्भिक शिक्षा में ही उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेता था तथा उच्च शिक्षा की प्राप्ति हेतु पूर्णतः योग्य हो जाता था।

2. उच्च शिक्षा–

उच्च शिक्षा का उन्नत रूप हमें बौद्धकाल में स्पष्टतः दिखाई देता है यदि यह कहा जाए कि उच्च शिक्षा बौद्धकाल में उच्चतम शिखर में थी, तो अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती। बौद्धकाल मे उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण होने से न केवल बौद्ध धर्म पर पड़ा, अपितु हिन्दू तथा जैन धर्म भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सके, समकालीन शिक्षार्थियों ने बढ़ चढ़ कर उच्च शिक्षा ग्रहण कर धार्मिक, आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक साहित्य पर अपनी रचनाएं

कर अपनी विद्वता प्रकट की। बौद्ध कालीन शिक्षा प्रदान करने वाले नालन्दा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय, वल्लभी विश्वविद्यालय विश्व प्रसिद्ध थे, जहाँ पर सभी प्रकार के साहित्य की शिक्षा सुयोग्य विद्वानों द्वारा अनुशासनबद्ध वातावरण में प्रदान की जाती थी। बौद्धकाल में स्नातक को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम विस्तृत था। पाठ्यक्रम में विषयों का चयन लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति की दृष्टिगत रखकर ही किया जाता था। बौद्ध धर्म में बौद्ध धर्म में बौद्ध दर्शन एवं धर्म के अतिरिक्त पाठ्यक्रम में अन्य धर्मो एवं दर्शनों के विषयों को भी स्थान दिया जाता था। जन-साधारण एवं भिक्षुओं के पाठ्यक्रम में पर्याप्त अन्तर था। बौद्ध शिक्षा में आयुर्वेद तथा सैनिक शिक्षा को विशेष स्थान प्राप्त था। जातकों से ज्ञात होता है कि तक्षशिला में अन्य शिक्षा केन्द्रों में शिल्पों का अध्ययन कराया जाता था।[1] तक्षशिला में जो शिल्प पढ़ाए जाते थे वे निम्नलिखित हैं-

1. चित्रकला 2. अंग विद्या 3. विषोपचर

4. निमित्त ज्ञान 5. मृगया 6. नृत्यकला

7. हस्ति सूत्र 8. शल्य 9. चिकित्सा

---

1 दुग्मेद्य जातक-संख्या 50

10.	व्यापार	11.	गुप्तकोश ज्ञान	12.	ज्योतिष
13.	कृषि	14.	धनुर्वेद	15.	संगीत
16.	युद्ध विज्ञान	17.	इन्द्रजाल	18.	पशु-पक्षी की बोली समझना

अतः कहा जा सकता है कि बौद्धकालीन शिक्षा पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा का समावेश करके स्नातकों को आत्मनिर्भर बनाने का कार्य प्रारम्भ किया।[1] मिलिन्दपन्हों के अनुसार उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय अध्ययन कराए जाते थे-

1.	गणित ज्योतिष	2.	शब्द विज्ञान	3.	नक्षत्र विज्ञान
4.	छन्द शास्त्र	5.	काव्य	6.	व्याकरण
7.	चारों वेद	8.	फलित ज्योतिष	9.	छः वेदांग
10.	गणित	11.	सूर्य चन्द्र ग्रहण	12.	विवेचन विद्या
13.	जादूगरी	14.	स्वर विज्ञान	15.	शब्द व्युत्पत्ति विद्या
16.	प्रतीक शास्त्र	17.	संगीत शास्त्र	18.	शकुन विज्ञान
19.	चित्रकला	20.	धूमकेतु और उल्का	21.	स्वप्न विज्ञान
22.	युद्धकला	23.	चिकित्सा तथा शल्य विज्ञान		

---

1 एस0एस0 अल्टेकर-प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पृष्ठ 114

24. इतिहास 25. कला 26. साहित्य

27. सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक दर्शन 28. पक्षियों तथा जन्तुओं की भाषा।

बौद्धकाल में शिक्षार्थी को अपना विषय चुनने की स्वतंत्रता थी। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यधिक पूर्ण तथा समीचीन था। क्षत्रियों को युद्ध विद्या के सभी अंगों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बौद्ध धर्म का अहिंसात्मक स्वरूप होते हुए भी बौद्धकाल की शिक्षा में सैन्य विद्या का महत्वपूर्ण स्थान था। बौद्धकाल में बौद्ध धर्म के साथ-साथ अन्य धर्मो की भी शिक्षा दिए जाने के फलस्वरूप विद्यार्थियों में तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति का भी विकास हो जाता था। शिक्षार्थी विरोधी दर्शनों का भी ज्ञान-प्राप्त कर अपने धर्म के दर्शन में व्याप्त कमियों को समझता था। अतः दर्शन के पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण तत्वज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित था। शंकराचार्य तथा गौड़पाद जैसे सुप्रसिद्ध हिन्दू विद्वान एवं दार्शनिक और नागार्जुन एवं वसुबन्धु जैसे अपने विरोध धर्म के दर्शनो में पूर्णतः पारंगत थे। दिवाकर सेन जो हिन्दू से बौद्ध धर्म में प्रवेश किए थे, हिन्दू, बौद्ध तथा जैन दर्शन में पारंगत थे वे तीनों दर्शनों की शिक्षा साथ-साथ देते थे।[1] स्पष्ट था कि बौद्धकालीन शिक्षा में दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता था, जिसके

---

1 हर्ष चरित-हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, अध्याय 8

कारण शिक्षार्थी का दृष्टिकोंण गम्भीर एवं पांडित्यपूर्ण होता था।[1] ह्वेनसांग ने विभिन्न दर्शनों का अध्ययन बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में किया था।[2] इत्सिंग के अनुसार बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में सर्वास्ति मत के ग्रन्थ 'अभिधम्म कोश' का अध्ययन भी कराया जाता है।[3] इस प्रकार बौद्धकालीन शिक्षा अत्यन्त धर्मनिरपेक्ष थी। ललित विस्तर में एक सौ करोड़ से आगे की गणना निम्नलिखित प्रकार से बतायी गयी है-[4]

एक सौ करोड़	=	एक अयुत
सौ अयुत	=	एक नियुत
सौ नियुत	=	एक कंकर
सौ कंकर	=	एक विवर
सौ विवर	=	एक अक्षोम्य
सो अक्षोम्य	=	एक विवाह
सौ विवाह	=	एक उत्संग
सौ उत्संग	=	एक बहुल

1 एoएसo अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 118
2 बील - लाइफ आफ ह्वेनसांग वाईसमन-हुईली पृष्ठ 70
3 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 1
4 ललित विस्तर-अध्याय 12, शिल्प संदर्शन परिवर्त।

सौ बहुल = एक नागबल

सौ नागबल = एक तिटलम्ब

सौ तिटलम्ब = एक व्यवस्थान प्रज्ञप्ति

सौ व्यवस्थान प्रज्ञप्ति = एक हेतु हिल

सौ हेतु हिल = एक करकु

सौ करकु = एक हेत्विन्द्रिय

सौ हेत्विन्द्रिय = एक समावलम्भ

सौ समावलम्भ = एक गणनागति

सौ गणनागति = एक निरवध

सौ निरवघ = एक मुद्राबल

सौ मुद्राबल = एक सर्वाबल

सौ सर्वाबल = एक विसंज्ञागति

सौ विसंज्ञागति = एक सर्वसंज्ञा

सौ सर्वसंज्ञा = एक विभूतंगमा

विभूतंगमा आगे की गणना के सम्बन्ध में कहा गया है कि सौ विभूतंगमाओं की गणना से पर्वराज सुमेरू के कण-कण को भी गिना जा सकता था। विभूतंगमा से उत्तर ध्वाजा ग्रवली गणना का उल्लेख हुआ है। इस गणना द्वारा गंगानदी के बालू के कणों को भी गिना जा सकता था। इससे उत्तर अग्रसारानाग की गणना थी, इससे सौ गंगानदी के बालू की कणों की गणना की जा सकती थी। इससे उत्तर परमाणु रजः प्रवेश के अनुगतों की भी गणना का विधान था। इस गणनाविधि को बोधिसत्व ने वर्णित किया है। बोधिसत्व ने परमाणुरजः प्रवेश की गिनती भी बतायी थी-[1]

सात परमाणु रज	=	एक अणु
सात अणु		एक त्रुटि
सात त्रुटि		एक वातायन रज
सात वातायन रज		एक शशरज
सात शशरज		एक एडकरज
सात एडकरज		एक गोरज
सात गोरज		एक लिक्षारज

1 ललित विस्तर-अध्याय 12, शिल्प संदर्शन परिवर्त।

सात लिक्षारज	एक सर्षप
सात सर्षप	एक यव
सात यव	एक अंगुलिपर्व
सात अंगुलिपर्व	एक वितस्ति
दो वितस्ति	एक हस्त
चार हस्त	एक धनुष
एक हजार धनुष	एक क्रोश
चार क्रोश	एक योजन

बोधिसत्व का गणनाशास्त्र अद्वितीय था। गणनाशास्त्र के बाद बोधिसत्व ने मल्लयुद्ध तथा शर निक्षेप विद्या के उत्कृष्ट प्रदर्शन किया था। इसके पश्चात् बोधिसत्व ने इक्यान्वे शिल्पों का अध्ययन किया था। ललित विस्तर में बोधिसत्व की शिक्षा से स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम विस्तृत एवं समुन्नत था। बौद्धकालीन शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यन्त गहन, मनोरंजनपूर्ण एवं समग्रात्मक था। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली मे जनसाधारण की शिक्षा का पाठ्यक्रम ब्राह्मण शिक्षा प्रणाली के सदृश था। सामान्यतः विद्यार्थियों को व्याकरण, संस्कृत, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, राजनीति एवं पालि की शिक्षा दी जाती थी। जबकि दर्शन की शिक्षा हेतु शिक्षार्थियों को हेतु

विद्या, अभिधम्मकोश आदि चुने हुए बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करना पड़ता था। हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी त्रिपिटक एवं बौद्ध धर्म की पुस्तकों के विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते थे। जबकि महायान के अनुयायी नागार्जुन, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति आदि दार्शनिकों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन करते थे। भिक्षुओं के लिए शिक्षा का पाठ्यक्रम अलग था।[1] इसमें धार्मिक ग्रन्थों का वर्चस्व था, लेकिन लौकिक विषय यथा काव्य, साहित्य, ज्योतिष, शामिल नहीं थे। भिक्षुओं को पालि तथा संस्कृत भाषा का ज्ञान कराया जाता था। इस भाषाओं में पारंगत होने के पश्चात भिक्षुओं को त्रिपटकों का अध्ययन कराया जाता था। त्रिपिटकों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात बौद्ध धर्म दर्शन के अन्य ग्रन्थों का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन कराया जाता था। बौद्ध धर्म दर्शन में पारंगत हो जाने पर भिक्षुओं को हिन्दू दर्शन, न्याय, योग तथा अन्य धर्म ग्रन्थों का सूक्ष्य अध्ययन कराया जाता था। जिससे वे ब्राह्मण प्रतिद्वन्द्वियों को शास्त्रार्थ कर पराजित कर सकें। ह्वेनसांग ने भी अपने प्रवास के तिहाई समय में हिन्दू धर्म दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अतएव बौद्ध भिक्षुओं को दर्शन के विषयों का अध्ययन का अत्यधिक सूक्ष्मता तथा गहनता से कराया जाता है। भिक्षु नैष्ठिक ब्रह्मचारी की भांति आजीवन अध्ययनरत रहते थे। बौद्धकाल में सैन्य शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। सुतसोम जातक के अनुसार उत्तर-पश्चिम

---

1 ए०एस० अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 119

सीमा प्रान्त में तक्षशिला सैनिक शिक्षा का प्रधान केन्द्र था।[1] बौद्ध शिक्षा में आयुर्वेद को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। चरक तथा सुश्रुत जैसे आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा चिकित्सक कनिष्क के समकालीन थे अतः कनिष्क के समय आयुर्वेद को पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान प्राप्त रहा होगा। शल्य क्रिया की उत्कृष्टता का भी ज्ञान हमें समकालीन ग्रन्थों से प्राप्त होता था। सिर तथा आंतों की भी शल्य क्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है। जातकों में वर्णित है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में शल्य क्रिया के विशेषज्ञ थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय के स्नातक शल्य क्रिया में पारंगत होते थे। जीवक जो बुद्ध के समकालीन थे, तक्षशिला में 7 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की थी, फिर भी उनके आचार्य ने घर लौटने की अनुमति दी थी।[2] आयुर्वेद का पाठ्यक्रम अत्यन्त विस्तृत था, शल्य क्रिया के कारण इसका पाठ्यक्रम और विस्तृत हो गया था। स्वयं चरक ने लिखा था कि आयुर्वेद की सभी शाखाओं का विशेषज्ञ होना संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त बौद्धकालीन शिक्षा में खेलकूद तथा व्यायाम शिक्षा का स्थान था। स्वयं भगवान बुद्ध का विचार था कि स्वस्थ विचारों के लिए स्वस्थ मस्तिष्क तथा शरीर का होना परमावश्यक है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रारम्भ में पाठ्यक्रम में संकीर्णता थी क्योंकि बौद्ध धर्म

---

1 सुत सोमजातक–सं. 222

2 एस0एस0 अल्टेकर–पूर्वोक्त ग्रंथ, 142

3 डा0 एल0के0 ओड–शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1983, पृष्ठ 156

का मूलाधार दुःखवाद एवं दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपदा तक सीमित था। कालान्तर में क्रमशः विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप ग्रहण कर लिया था तथा शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ व्यवसायिक भी हो गया था, शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन में परिवर्तित होता जा रहा था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में मध्यमा प्रतिपदा का सिद्धान्त का पूर्णतः प्रभाव था। जिसके कारण पाठ्यक्रम में संकीर्णता नहीं थी। बौद्ध शिक्षा में न तो जैन धर्म के समान पूर्ण विरक्ति का आग्रह है, न ही चार्वाक दर्शन के सांसारिक सुख का दर्शन का प्रभाव। बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम में बौद्ध धर्म दर्शन की शिक्षा के साथ-साथ अन्य धर्म के दर्शनों की शिक्षा प्रदान करने पर बल देना यह कहने के लिए पर्याप्त है कि बौद्ध शिक्षा ज्ञानाधारित थी। बौद्ध शिक्षा धर्मनिरपेक्ष स्वरूप वाली थी। बौद्धकालीन शिक्षा में जहां एक ओर चिन्तन-मनन एवं ध्यान का आग्रह है वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक एवं आजीविका की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। अतः हम स्पष्टतया कह सकते थे कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में अध्यात्मिकता एवं व्यावहारिकता का सुन्दर एवं अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया गया था। वस्तुतः यही कारण है जिसने बौद्ध धर्म को विश्वविख्यात कीर्ति दिलाई।

शिक्षण विधि

हम पूर्व में ही जान चुके हैं कि बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यन्त उच्च कोटि का एवं विस्तृत था। इस पाठ्यक्रम के विषयों को सम्यक रूप से ग्राह्य बनाने के लिए अनेक प्रकार की शिक्षा विधियों का प्रयोग किया जाता था। तत्कालीन बौद्ध शिक्षा में अनेक प्रकार की शिक्षण विधियां प्रचलित थी। बौद्ध शिक्षा में आचार्य भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षा अलग-अलग विधियों से प्रदान करते थे। बौद्धकालीन शिक्षण पद्धति में निम्नलिखित शिक्षण विधियां प्रचलित थीं-

1. मौखिक विधि

वैदिक काल से ही मौखिक शिक्षा, शिक्षा प्रदान करने की उत्तम विधि थी। लेखन-मुद्रण कला के अभाव में आरम्भ से ही शिक्षा मौखिक दी जाती थी।[1] अतएव बौद्धकाल में भी इस शिक्षण प्रविधि का महत्व बना रहा। मौखिक शिक्षण पद्धति में स्मरण शक्ति पर विशेष बल दिया जाता था। शिक्षार्थी को विषयों को कंठस्थ करना पड़ता था। छात्र प्रतिदिन पाठ की पुनरावृत्ति कर अभ्यास करते थे। इस शिक्षण पद्धति में छात्र की स्मरण शक्ति

---

1 आ0के0 मुकर्जी-ऐशेण्ट इण्डियन एजुकेशन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, पृष्ठ 211

अत्यन्त प्रखर हो जाती थी।[1] जब तक छात्र पाठ पूर्णतः कंठस्थ नहीं कर लेते थे, आचार्य नवीन पाठ की शुरूआत नहीं करते थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए कतिपय ऐसी क्रियाओं का गूढ़ भाषा में स्पष्ट वर्णन किया है जिसके 10 या 15 दिन के अभ्यास में ही विद्यार्थी यह अनुभव करने लगते थे कि उनमें विचारों का उत्स फूट निकला है और एक बार सुन लेने के बाद वह कुछ भी स्मरण कर सकते थे।[2] इत्सिंग आगे लिखता है कि इसमें कुछ असत्य नहीं है स्वयं इत्सिंग ऐसे व्यक्तियों से साक्षात्कार किया था। वस्तुतः जब पुस्तकें या लिखित कला का अभाव हो तो स्मरण शक्ति का इस स्तर तक विकसित हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। इत्सिंग के अनुसार बौद्ध धर्म में शिक्षा का स्थान विशेष था क्योंकि बिना शिक्षा के धर्म प्रसार असंभव था।[3] इत्सिंग ने शिक्षण तिथि के विषय में कहा कि "प्रतिदिन प्रातःकाल मुख प्रक्षालन के अनन्तर विद्यार्थी को गुरू के समीप जाना चाहिए और मुख प्रक्षालन की सामग्री जुटानी चाहिए......... तत्पश्चात वह अपने अध्ययन किए हुए विषय को सुनाता है और नवीन ज्ञान प्राप्त करता है।[4] इस प्रकार कहा जा सकता है कि मौखिक शिक्षण विधि ने छात्रों की स्मरण शक्ति को अत्यन्त प्रखर कर दिया था जिसका उपयोग वे उपदेश देने एवं

---

1 ए0एस0 अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रन्थ- पृष्ठ 122

2 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 183

3 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 116

4 इत्सिंग-पूवोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 117

शास्त्रार्थ में विशेषता के साथ करते थे तथा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते थे।

2. पद्य विधि

प्राचीन काल में मुद्रण कला का अभाव होने से लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं थी, जिसके लिए अध्यापकों तथा छात्रों को स्मरण शक्ति के आधार पर शिक्षा आदान-प्रदान करनी पड़ती थी। स्मरण शक्ति की वृद्धि हेतु तत्कालीन शिक्षकों तथा विद्वानों ने एक तकनीक विकसित कर ली थी। वे जानते थे कि पद्य सौन्दर्यानुभूति के कारण स्मरण रखने हेतु उत्तम होता है। इससे विषय रोचक हो जाने तथा लयबद्ध होने के कारण किसी भी विषय को लम्बे समय तक स्थायी रूप से स्मरण रखा जा सकता है। अतएव तत्कालीन विद्वानों तथा आचार्यो ने शिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षण पद्धति को लयबद्ध पद्य के रूप में ढाल दिया था।[1] पद्य विधि ने शिक्षण पद्धति को सुगम कर दिया।

3. सूत्र विधि

प्रारम्भिक अध्ययन अध्यापन पूर्णतः मौखिक विधि पर संचालित होता था। इस कारण समरण शक्ति का उन्नत होना परमावश्यक था। स्मरण शक्ति एवं धारण शक्ति उत्तम होने पर ही उत्तम शिक्षा ग्राह्य थी। अतएव विद्वानों ने मुख्य परिणामों को छोटे-छोटे वाक्यों में सूत्रबद्ध कर दिया गया। सूत्र विधि के

---

1 एO एसO अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 122

विकास ने शिक्षार्थियों को शिक्षा ग्राह्य करने में अत्यधिक सहायता की। अतएव सूत्र विधि का विकास सभी विद्यार्थियों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ।

4. व्याख्या विधि

विद्वानों तथा आचार्य शिक्षा प्रदान करने हेतु व्याख्या विधि विकसित की, व्याख्या विधि द्वारा आचार्य अपने शिष्यों को किसी भी विषय का समुचित अविस्मरणीय ज्ञान प्रदान करते थे। ह्वेनसांग ने वर्णन किया है कि अध्यापक अपने शिष्य को अर्थ सहित अनुवाद बता देते थे, सूक्ष्म अंशों का विस्तारपूर्वक व्याख्यायित करते थे, शिष्यों को क्रियाशील बनाने की प्रेरणा देते थे और बड़े ही कुशलता से उनका विकास करते थे। कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों को उपदेश देते थे तथा मन्द बुद्धि वाले विद्यार्थियों को कुशाग्र बनाते थे।[1] व्याकरण, आयुर्वेद और दर्शन जैसे गूढ़ विषयों का अध्ययन छात्र स्वतः नहीं कर सकते थे। इस विषयों को समझाने के लिए आचार्य विस्तृत व्याख्यान देते थे। सम्यक रूप से समझ लेने पर विषय छात्र को याद हो जाता था। समझ में आने के कारण रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कतिपय व्याख्याएं तो टीकाओं में सम्मिलित कर ली जाती थीं। दर्शन, काव्य और न्याय के कठिन विषयों का अध्यापन इसी विधि से किया जाता था। इत्सिंग कहता है कि आदरणीय आचार्यों के मुख-कमल से ज्ञान प्राप्त करने में मै अपने को धन्य

---

1 वाटर्स पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 160

समझता हूँ, जो मेरे लिए अन्यत्र असम्भव था।[1] ह्वेनसांग ने आचार्यों की इसलिए प्रशंसा नहीं की है कि उन्हें सम्पूर्ण नियम कंठस्थ थे, अपितु कठिन अंशों की व्याख्या और शंकास्पद या विवाद्य स्थानों के लिए सटीक सुझाव उपस्थित करने की विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित हुआ था।[2] इस प्रकार यह शिक्षण विधि इस प्रकार की थी कि विद्यार्थी को केवल सिद्धान्त का ही नहीं, व्यवहार का ज्ञान हो जाता है।[3] चीनी लेखकों के अनुसार भारतीय आचार्य अध्यापन और अभिव्यक्ति की कला में निपुण होते थे। चीन, कोरिया और सुदूरवर्ती देशों के विद्यार्थी यहां के आचार्यों द्वारा गूढ़ विषयों की व्याख्या सुनने के लिए आते थे, इस प्रकार की व्याख्या विश्व में अन्यत्र दुर्लभ मानी जाती थी।

5. वाद-विवाद विधि

वाद विवाद द्वारा अध्यापन करने से छात्र में तर्कशक्ति बुद्धि तथा शब्द सामर्थ्य की वृद्धि होती थी। बौद्ध कालीन शिक्षा में इस विधि की प्रधानता थी, क्योंकि बौद्धों को प्रायः विरोधयों से शास्त्रार्थ करने पड़ते थे। वाद-विवाद की परम्परा बौद्धकालीन शिक्षा में अविच्छिन्न रूप से विद्यमान थी। वाद-विवाद द्वारा शिक्षा प्रदान करने की पद्धति का महत्व प्राचीन काल से है। वाद-विवाद में

---

1 इत्सिंग -पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 185

2 बील-पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 122

3 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 159

विजयी होने वाले को पर्याप्त पुरस्कार भी दिये जाते थे।[1] ऋग्वेद में पुरस्कार देने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। वाद-विवाद पद्धति में प्रतिपादित विषय को सुलझाने, उसकी विशिष्टताओं एवं कमियों को प्रकाशित करने, ग्रन्थकार के उद्देश्य समझाने और विरोधियों की त्रुटियों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया जाता था।[2] इससे छात्रों की वक्ता शैली में सुधार एवं विवेक पूर्ण तर्कशक्ति की क्षमता में वृद्धि होती थी।[3] आचार्यो द्वारा छात्रों के मध्य शास्त्रार्थ का अयोजन किया जाता था, छात्र परस्पर वाद-विवाद कर अपने ज्ञान में वृद्धि करते थे। आचार्य आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप भी करते थे। छात्र अपने पक्ष का मण्डन तथा प्रतिपक्ष के तर्को का खण्डन करते थे। मण्डन-खण्डन की यह विधि छात्रों में वक्तृत्व शक्ति एवं प्रत्युत्पन्न मतित्व का विकास करती थी।[4] किन्ही-किन्ही विद्यालयों में शिक्षण की एकमात्र पद्धति वाद-विवाद ही थी। संभवत: अन्य शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा विधि में वाद-विवाद विधि अवश्य ही शामिल होगी। वाद-विवाद विकध द्वारा प्राप्त ज्ञान गहन, सूक्ष्म, एवं तर्कपूर्ण होने से स्थायित्व धारण करता था[5], जिसने विश्वविद्यालयी शिक्षा को समुन्नत किया।

---

1 मिलिन्द प्रश्न-भाग 1 पृष्ठ 185
2 मिलिन्द प्रश्न-भाग 1 पृष्ठ 46
3 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ 162
4 ए0एस0 अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 124
5 आर0के0 मुखर्जी-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 452

6. कथा विधि

बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में कथा साहित्य का विशेष योगदान था। कथा के माध्यम से उदाहरणों का वर्णन कर छात्रों को दी जा रही शिक्षा को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य किया जाता था। कभी-कभी गूढ़ सिद्धान्तों की व्याख्या में कथा आख्यायिकाओं की भी सहायता ली जाती थी। कथा विधि द्वारा शिक्षण प्रदान करना अत्यन्त रोचक होने के कारण विद्यार्थी सुगमता से ज्ञान प्राप्त कर लेता था तथा कथाओं के माध्यम से अपने ज्ञान को स्थायी बना लेता था। अतएव बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में कथा विधि का भी अत्यधिक प्रचलन था।

7. वैयक्तिक शिक्षा विधि

वैयक्तिक शिक्षा विधि का बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, वैयक्तिक शिक्षा विधि में छात्र विशेष को पृथक रूप से शिक्षा प्रदान करना होता था। बौद्ध विद्या दर्शन की प्रधान विशेषता थी प्रत्येक छात्र की प्रगति का पृथक-पृथक ध्यान देना।[1] ऐसा संभव भी था क्योंकि उस समय आचार्य एवं शिष्यों का अनुपात 1:15 से अधिक न रहा होगा। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में सभी छात्रों को समान रूप से देखा जाता था

---

1 ए0एस0 अल्टेकर-पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 125

तथा उन्हें सम्यक् अध्ययन कराया जाता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में छात्र को प्रतिदिन परीक्षा देनी पड़ती थी यह परीक्षा प्रश्नोंत्तर के रूप में मौखिक होती थी। इस परीक्षा में प्रोन्नति आदि की व्यवस्था नहीं थी अपितु छात्र को पाठ कंठस्थ कराने का प्रयास किया जाता था। जब तक छात्र पाठ कंठस्थ नहीं कर लेता था उन्हें अगला पाठ नहीं पढ़ाया जाता था, परन्तु जो छात्र अपना पाठ याद कर लेता था उसे अगला पाठ पढ़ाया जाता था[1]। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में प्रतिभाशाली छात्र का समय नष्ट नहीं होता था। साथ ही मन्द बुद्धि छात्र की उपेक्षा भी नहीं हो पाती थी। आलसी तथा लापरवाह छात्रों को आचार्य तब तक अध्ययन कराते थे, जब तक वे छात्र अध्ययन समाप्त न कर लें।[2] इन आलसी तथा लापरवाह छात्रों पर भी आचार्यो द्वारा पूर्ण ध्यान दिया जाता था। वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि अध्यापक की आवाज भी पिछली पंक्ति पर बैठा छात्र सुन नहीं पाता है। वहीं बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में छात्र-अध्यापक के बीच अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। चीनी यात्री ने विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने तथा उनकी प्रगति का निरन्तर ध्यान देने के लिए भारतीय आचार्यो की प्रशंसा की है। वैयक्तिक शिक्षा विधि अपनाने से बौद्ध शिक्षा प्रणाली में जहां एक ओर

---

1 मिलिन्द प्रश्न-भाग 1 पृष्ठ 18

2 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृ0 160

प्रतिभाशाली छात्रों का समय नहीं बर्बाद होता था, वहीं मन्द बुद्धि तथा आलसी विद्यार्थियों पर आचार्यो द्वारा पूर्ण ध्यान देने से उन छात्रों में सुधार होता था।

8. अग्रशिष्य शिक्षा विधि

अग्रशिष्य शिक्षा-विधि में शिक्षा केन्द्रों के योग्य और अनुभवी छात्रों से शिक्षण कार्य में सहायता ली जाती थी यह सुयोग्य एवं वरिष्ठ विद्यार्थी जहाँ एक ओर कनिष्ठ छात्रों को अध्यापन कार्य करते थे वहीं दूसरी ओर शिक्षालयों का निरीक्षण करते थे। उच्च्व कक्षाओं के बुद्धिमान, विद्वान छात्रों की सहायता से जहाँ नए विद्यार्थियों की शिक्षा की देखभाल में आचार्यो को सरलता हो जाती थी, वहीं आलसी, सुस्त एवं मन्द बुद्धि बालकों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। वल्लभी के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में इत्सिंग ने लिखा है कि वे दो तीन वर्ष तक अपने आचार्यो से पढ़ने तथा अन्य विद्यार्थियों को पढ़ाने में बिताते थे।[1] कुरू के राजकुमार सुतसोम जो तक्षशिला के वृद्धतर ब्रह्मचारी थे, काशी के युवराज को पढ़ाते थे।[2] इन अग्रशिष्यों का विद्यालयों में अत्यधिक सम्मान होताथा। आपस्तम्ब का कहना था कि ऐसे विद्यार्थियों का, जिनको वह बुद्धतर ब्रह्मचारी कहते हैं, सम्मान आचार्य के सदृश होना चाहिए।[3] अग्र शिष्य शिक्षा विधि ने विद्यार्थियों में अध्यापक का गुण उत्पन्न कर दिया, कहा जा

---

1 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 177

2 सुख बिहारी जातक-सं0 10

3 आपस्तम्भ धर्म सूत्र पृष्ठ 2.7.27

सकता है कि इस विधि द्वारा शिष्यों का अध्यापन-प्रशिक्षण प्रारम्भ हो जाता है जिससे सुयोग्य आचार्यो की पंक्ति तैयार हो जाती थी। इस प्रकार अग्र शिष्य शिक्षा पद्धति छात्र तथा विद्यालयों के लिए वरदान थी। प्रतिभाशाली छात्र को अध्यापन का अवसर प्रदान करने से छात्र अपने विषय में दक्ष हो जाता था तथा शिक्षण संस्था को एक सुयोग्य निःशुल्क शिक्षक की सेवा मिल जाती थी। इससे आचार्यो को भी शिक्षालय के विकास के लिए अन्य योजनाएं बनाने का समय मिल जाता था।

9. निरीक्षण एवं तुलना विधि

निरीक्षण एवं तुलना विधि द्वारा अध्यापक मन्द बुद्धि, अप्रतिभावान विद्यार्थियों को नवीन तथ्यों का निरीक्षण और प्राचीन से उसकी तुलना करने को कहते थे, निरीक्षण एवं तुलना का प्रयोग प्राचीन काल से शिक्षा प्रदान करने से किया जाता था।[1] इस प्रकार विद्यार्थियों की बोध-शक्ति का विकास किया जाता था, वस्तुतः निरीक्षण तथा तुलना विधि से छात्रों में विषय के प्रति सजगता तथा सूक्ष्मता, गहनता का बोध होता था।

10. गुरू-शिष्य संवाद विधि

गुरू-शिष्य-संवाद विधि का उल्लेख हमें प्राचीन और भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में सर्वत्र प्राप्त होता है। उपनिषदों में गुरू-शिष्य संवाद द्वारा शिक्षा प्रदान

---

1 जातक-सं0 124

करने के दृष्टान्त प्राय: मिलते हैं। इस विधि से गुरू-शिष्य संवाद के रूप में भी व्याख्यान दिये जाते थे। इस विधि में अध्यापक को विद्यार्थी पर अपने व्याख्यान के प्रभाव को समझने का पूर्ण अवसर मिलता था। इस विधि में अध्यापक द्वारा सम्बन्धित विषय पर व्याख्यान दिया जाता था। फिर छात्र अपना मत प्रकट करता था, फिर अध्यापक यदि छात्र के मत में कोई कमी या त्रुटि देखता तो उसका खण्डन करता था। जिससे छात्र में शिक्षा को बोधगम्य करने में सहायता मिलती थी। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में गुरू-शिष्य संवाद विधि का अत्यन्त प्रभाव था। बौद्ध सूत्रों में गुरू-शिष्य संवाद द्वारा शिक्षण किए जाने उल्लेख मिलता है। नागसेन तथा मिलिन्द का संवाद विश्व प्रसिद्ध है। गुरू शिष्य संवाद विधि में जहां एक ओर गुरू-शिष्य के सम्बन्धों में निकटता आती थी वहीं शिष्य पर गुरू द्वारा पूर्ण ध्यान दिया जाता था जिससे छात्र के बुद्धिस्तर, ज्ञानस्तर, मानसिक स्तर का पूर्णत: विकास निश्चित हो जाता था जिससे शिष्य भविष्य में गुरू की भूमिका का निर्वाहन करने हेतु अपने को तैयार कर लेता था।

छात्रों की स्थिति

बौद्धकाल में शिक्षा प्रदान करने के केन्द्र विहार, मठ तथा विश्वविद्यालयों में ही होती थी। इन शिक्षा केन्द्रों का वातावरण वैदिक काल की ही भांति अनुशासनबद्ध था। गुरूकुल प्रणाली की ही भांति बौद्ध काल में गुरूकुल प्रथा प्रचलित थी। संघ, विहार तथा मठ में गुरूकुलों की ही भांति शिक्षा दी जाती थी। ये शिक्षा केन्द्र पर्वतों, गुफाओं, में स्थापित होते थे जो एकान्त में होते थे, जनसाधारण से दूर, बस्ती से दूर पर्वतों या एकान्त में बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जाती थी, जिससे विद्यार्थियों को घर-परिवार का मोह न हो, जिससे शिक्षा केन्द्रों में शैक्षिक वातावरण बना रहे। जातकों से विदित होता है कि आचार्यगण काशी जैसे भव्य नगरों का परित्याग कर हिमालय की कन्दराओं में चले जाते थे।[1] गुरूकुल में रहते हुए विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें कठोर अनुशासन में रखा जाता था । उन्हें घर परिवार जाने की अनुमति नहीं थी तथा असुविधाओं तथा अभावों का सामना करना पड़ता था। विद्यार्थी चाहे धनी परिवार का हो, राजपरिवार का हो, या निर्धन परिवार का हो, सभी को सुविधा विहीन समानता से शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरूकुल व्यवस्था सम्बन्धी समस्त कार्य सभी छात्रों को परस्पर सामंजस्य से करना पड़ता था।

---

1 जातक सं0 438

धनी–निर्धन का कोई भेद नहीं था। इस प्रकार यह व्यवस्था विद्यार्थियों को अधिक सहनशील, परिश्रमी, आत्मनिर्भर तथा दक्ष बना देती थी।[1] गुरूकुलों का सुविधा विहीन होने पर इतनी अधिक ख्याति थी जिसके कारण इन शिक्षा केन्द्रों में अनेक राजपुत्र तथा धनिक पुत्र शिक्षा प्राप्ति हेतु अभावपूर्ण, असुविधापूर्ण वातावरण में भी प्रवेश हेतु उत्सुक रहते थे। इन शिक्षा केन्द्रों में विद्यार्थियों को पूर्णतया अनुशासनबद्ध जीवन व्यतीत करना होता था, नियमों का पालन करना अक्षरशः अनिवार्य था, नियमों का किंचित मात्र उल्लंघन छात्र को शिक्षा केन्द्र से निष्कासन का कारण बन सकता था। विद्यार्थी को प्रातः काल के पूर्व ही ब्रह्म मुहूर्त में शय्या का त्याग करना होता था, नित्य क्रिया के पश्चात् अध्ययन कार्य प्रारम्भ हो जाता था। प्रातःकाल के अध्ययन के उपरान्त ही भोजन प्राप्त करने की अनुमति थी, भोजन के पश्चात विश्राम की व्यवस्था थी। मध्यान्ह के पश्चात् पुनः अध्ययन किया जाता था। संध्या–उपासना के रात्रि का भोजन करके गुरू की सेवा की जाती थी, तत्पश्चात् विद्यार्थी शैय्या पर जाते थे। गुरू की आज्ञा पालन करना शिष्य का प्रमुख कर्तव्य था। विद्यार्थी भिक्षाटन द्वारा भोजन प्राप्त करता था। विद्यार्थी लकड़ियां एकत्र करता था, जिससे अग्नि प्रज्जवलित होती थी। विद्यार्थी अग्नि प्रज्जवलित करने के बाद ही भोजन प्राप्त

---

1 तिल भुद्धि जातक-सं0 452

करने का अधिकारी था। धम्म जीवन का आदर्श जीवन में सादगी अत्यन्त आवश्यक मानी गयी है। छात्रों को विद्याध्ययन काल में केश रखने का निषेध था। छात्र अपने केश मुड़वा देता था। छात्र के लिए छाता, जूता या कोमल शैय्या का उपयोग पूर्णतः वर्जित था। छात्र को कठोर जीवन की शिक्षा दी जाती थी जिससे कोमलता छात्र के जीवन में शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग में बाधा न बन सके। चरक ने राजा, माता-पिता या ईश्वर की भांति गुरू को परम पूज्य मानना छात्रों का परम कर्तव्य था।[1] उन्होंने कहा कि जैसे कोई पुत्र पिता की, अर्थदाता की, या दास अपने स्वामी की सेवा करता है, उसी प्रकार बौद्ध विहारों में विद्यार्थी आचार्य की सेवा करते थे। आवश्यकता पड़ने पर शिष्य को आचार्य के बर्तन तथा वस्त्र साफ करने होते थे।[2] छात्रों को किसी की निन्दा करना पूर्णतः वर्जित था। किन्तु यह समझना भूल होगी कि छात्र आचार्य के दुर्गुणों की ओर ध्यान न दे। गौतम बुद्ध ने गुरू के प्रति उचित सम्मान का आदेश दिया परन्तु यह भी व्यवस्था दी कि यदि आचार्य में दुर्गुण हो तो शिष्य को एकान्त में आचार्य का ध्यान आकर्षित करें तथा यदि उनकी दृष्टि बुरे कार्यो में लग गयी हो तो शिष्य का कर्तव्य है कि आचार्यो को बुरे जाने

---

1 चरक संहिता-विमान स्थान, 8.4

2 गुणम जातक-सं0 157

से रोकें।[1] यदि आचार्य धर्माचरण से च्युत हो जाए तो शिष्य उसकी आज्ञा पालन करने या न करने हेतु स्वतंत्र है। आचार्य को इस बात का भी अधिकार नहीं था कि वह शिष्य को उस बात की आज्ञा दे, जिसका पालन करने से उसका जीवन खतरे में पड़ जाय या जो धर्म के विधान के प्रतिकूल हो, यह व्यवस्था अन्यत्र नहीं प्राप्त होती है। जहाँ शिष्य को गुरू की आज्ञा का पालन करने में धार्मिक विधान को दृष्टि में रखना पड़ता है। यह बौद्ध शिक्षा प्रणाली की अपनी निजी विशेषता है। दिव्यादान में गुरू तथा शिष्य के पृथक-पृथक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। मिलिन्दपन्हों ने अपने शिष्य का गुरू के प्रति कर्तव्य तथा उनके परस्पर सम्बन्धों का सुन्दर उल्लेख किया गया है। मिलिन्दपन्ह के अनुसार शिष्य में दस गुणों का होना अनिवार्य है-

1. शिष्य अपने मन, वाणी तथा कर्म पर नियंत्रण रखे।
2. शिष्य की बुद्ध, धम्म तथा संघ में आसक्ति हो।
3. शिष्य सदैव ही अपने विचारों को ठीक रखे।
4. शिष्य में वैमनस्य का अभाव हो तथा धार्मिक व्यवहार में भी लड़ने की भावना न हो।
5. शिष्य सुख-दुख को समान समझे।

---

1 महावग्ग-1-25, 11-21

6. शिष्य धर्म को गिरते देख उसे उठाने का प्रयास करे।

7. शिष्य गुरू के आदेश से धर्म का पालन करे।

8. शिष्य उत्तेजना के भाव से किसी अन्य गुरू के पास न जाय।

9. शिष्य जो दे सकता है, प्रसन्नता से दे।

10. शिष्य शान्तिगामी हो।

इत्सिंग ने बताया है कि शिष्यों को आदेश प्रदान करना धर्म की अभिवृद्धि के लिए परमावश्यक था।[1] आगे लिखता है कि प्रातःकाल दातून करने के पश्चात गुरू के पास आकर उन्हें भी दातून देना चाहिए।[2] आचार्य भी आवश्यकता पड़ने पर शिष्य की सहायता करते थे तथा उनकी देखभाल करते थे। शिष्य के बीमार होने पर आचार्य उसके माता-पिता की भांति सेवा करता है।[3] भोजन में मांस, मदिरा, एवं मिष्ठान्न का वर्जन था क्योंकि इनके उपभोग से कामवासना उदीप्त होती है, जिससे युवावस्था में धर्म तथा नैतिक सदाचार में भटकाव हो सकता था। इसलिए छात्रों को सादगी तथा हल्का सुपाच्य भोजन दिया जाता है, छात्रों को भी वस्त्र तथा आभूषणों को धारण करना पूर्णतः

---

1 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रन्थ- पृष्ठ 116

2 इत्सिंग-पूर्वोक्त गंथ पृष्ठ 116

3 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 1-21

वर्जित था।[1] छात्रों को पूर्णतः भिक्षु की भांति विद्यार्थी–जीवन व्यतीत करना होता था। सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। विहारों में विद्यार्थी को कठोर परिश्रम करने पड़ते थे। यह भी प्रमाण मिलते हैं कि तक्षशिला में जो छात्र गुरू दक्षिणा अग्रिम चुका देते थे उन्हें आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र की भांति माना जाता था।[2] वे गृहस्थी का कोई कार्य नहीं करते थे जबकि शुल्क न देने वाले विद्यार्थी गृहस्थी का कार्य करते थे। मुक्त शुल्क विद्यार्थी को धम्मान्तेवासी कहा गया है। ये छात्र दिन में आचार्य के खेतों में या घर पर काम करते थे तथा रात्रि में अध्ययन करते थे।[3] शिष्यों में यह भेद बौद्ध शिक्षा की निजी विशेषता थी।

---

1 जुन्ह जातक

2 ए0एस0 अल्केर–पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 46

3 तिल मुट्ठि जातक सं0 252

अध्यापक की स्थिति

वैदिक काल से ही आचार्य-शिष्य की पवित्र पवित्रता चली आ रही है। गुरू-शिष्य के मध्य अत्यन्त सम्माननीय सम्बन्ध था। वृहदारण्यक उपनिषद में वर्णित हे कि प्रवाहण जैबलि ने शिष्य रूप में आये उद्धातक का सस्नेह सम्मान किया था। अश्वपति ने अध्ययनार्थ उपस्थित उद्धातक सहित अन्य विद्वानों का स्वागत किया था। छांदोग्य उपनिषद में लिखा है कि जब नचिकेता ज्ञान प्राप्ति हेतु यमराज के यहाँ गए थे, तो यमराज ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। प्रायः गुरू अपने शिष्य को 'सौम्य' कहते थे, जिसका अभिप्राय था चन्द्रमा के सदृश आकर्षक और मधुर-गुण सम्पन्न। गुरू की शिष्य के प्रति सदा अभिन्नता रहती थी। महावग्ग में वर्णित है कि गुरू शिष्य के साथ पुत्रवत व्यवहार करता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भी वैदिक काल की ही भांति गुरू का श्रेष्ठ एवं पूजनीय सम्मान प्राप्त था। गुरू को यह सम्मान मिलना स्वाभाविक ही था क्योंकि विद्यालय के भवन एवं साज-सज्जा का छात्र पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना एक सच्चरित्र, विद्वान गुरू का, जो उसे शिक्षा प्रदान करते थे। महावग्ग, दिव्यादान तथा मिलिन्दपन्ह में आचार्य के गुणों के बारें में प्रकाश डाला गया है।भगवान बुद्ध ने यह स्पष्टतः कह दिया था कि उपाध्याय "उपशून्य" संविहारिक को पुत्रवत तथा वह विद्यार्थी अपने गुरू

को पितातुल्य समझे। गुरू-शिष्य परस्पर आदर, विश्वास तथा सामान्य जीवन ध्येय द्वारा धर्म और विनय में पूर्णतया प्रगति कर उच्च श्रेणी पर पहुंच सकेंगे। मिलिन्दपन्हों में आचार्य में निम्नलिखित पच्चीस गुणों का होना परमावश्यक बताया है-

1. आचार्य में उत्साह हो।
2. आचार्य शिष्य को आगे बढ़ाने का प्रयास करें।
3. आचार्य धर्माचरण के साथ रहे।
4. आचार्य शिष्य के साथ हँसी, मजाक न करे।
5. आचार्य शिष्य को पीछे हटने से रोके।
6. आचार्य शिष्य को खण्डित शिक्षा कभी न दे।
7. आचार्य शिष्य को अच्छे बुरे का ज्ञान दे।
8. आचार्य शिष्य को यह बताए कि उसे किन गाँवों में तथा विहारों में जाना चाहिए।
9. आचार्य शिष्य को बताए कि शिष्य को किसका परित्याग करना है, तथा किसमें आसक्त होना है।
10. आचार्य भिक्षुपात्र में जो प्राप्त होता है उसे शिष्य के साथ बांट ले।

11. आचार्य को सदैव शिष्य का भार निःसंकोच रूप में लेना चाहिए।

12. आचार्य शिष्य को शयन, भोजन, स्वास्थ्य, तथा स्वाध्याय, के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान दे।

13. आचार्य शिष्य की ओर से ध्यान न हटाए।

14. आचार्य शिष्य को बल प्रदान करे।

15. आचार्य शिष्य के साथ आलाप न करे।

16. आचार्य शिष्य को अधूरा पाठ न पढ़ाए।

17. आचार्य शिष्य को स्नेह दृष्टि से देखे।

18. आचार्य शिष्य को सेवन तथा निषेध की वस्तु बता दे।

19. आचार्य शिष्य को भयभीत होने का आदेश दे।

20. आचार्य शिष्य को किन-किन का साथ करना है, बताए।

21. आचार्य शिष्य को उसकी शिक्षा का ध्येय बताए।

22. आचार्य शिष्य से दोष के लिए क्षमा मांगे।

23. आचार्य शिष्य से कुछ न छिपावे।

24. आचार्य शिष्य को पुत्रवत समझे।

25. आचार्य आपदा में शिष्य का त्याग न करे।

महावग्ग में भी गुरू-शिष्य के मध्य पिता-पुत्र की कल्पना की गयी है।[1] महावग्ग में आचार्य को शिष्य का मानस पिता कहा गया है- **"पुत्रभिवैनभभिनकांक्षन्"**। गुरू का कर्तव्य था कि अपने शिष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर लाए। जिस प्रकार शिष्य से विनय की अपेक्षा की जाती थी उसी प्रकार गुरू में भी चरित्रवान, विद्वता, तथा स्नेह वांछनीय था। गुरू के भी शिष्य के प्रति कर्तव्य थे। गुरू विद्यार्थियों से कोई भी विद्या गोपनीय नहीं रखता था।[2] वस्तुतः शिष्य के दुर्गुणों का उत्तरदायी गुरू को ही माना जाता था, अतः शिष्य के दैनिक आचरण पर गुरू की दृष्टि और नियंत्रण परमावश्यक था। इत्सिंग कहता है कि उस आचार्य से कसाई श्रेष्ठ है जो दीक्षित होने के बाद भी शिष्य को अशिक्षित रहने दे,[3] जो गुरू अच्छी तरह से शिक्षा नहीं दे सकते वे ईश्वरीय नियम के उल्लंघन के दोषी होते हैं तथा निश्चित ही नरकगामी होते हैं। आचार्य में वक्तृत्वशक्ति, तर्कशक्ति और कठिन से कठिन विषय को समझाने की क्षमता होना परमावश्यक थी। सुयोग्य गुरू सुयोग्य शिष्य का ही निर्माण करता है। आचार्य के अध्यापन के अतिरिक्त अन्य कर्तव्य और शिष्य के प्रति उत्तरदायित्व थे। वह शिष्य के साथ पिता पुत्र की भांति व्यवहार करता था, वह शिष्य को नैतिक, अनैतिक कर्तव्यों के बारे में बताता

---

1 महावग्ग 1.32

2 मिलिन्द पन्ह-भाग 1 पृष्ठ 142

3 इत्सिंग-पूर्वोक्त ग्रंथ- पृष्ठ 116

है, उसे बुरे कर्मो की ओर जाने से रोकता था, आचार्य शिष्य को सदाचारी बनाने हेतु पूर्णतः सजग रहता था। अस्वस्थता में आचार्य पिता की ही भांति शिष्य की देखभाल करता था। भगवान बुद्ध ने आचार्य को शिष्य की पूर्ण देखभाल करने के निर्देश दिए थे। बौद्धकालीन शिक्षा में आचार्य अत्यन्त कोमल, उदार एवं विशाल हृदय वाले होते थे। बौद्धकालीन शिक्षा में गुरू को अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त था, आचार्य पूजनीय था परन्तु आचार्य पर सदाचारी, होने का प्रतिबन्ध था, आचार्य के सदाचारी एवं धार्मिक होने पर ही आचार्य की आज्ञा का पालन शिष्य करते थे। अन्यथा शिष्य गुरू की आज्ञा पालन करने के बंधन से मुक्त थे। बौद्धकाल में आचार्य एवं शिष्य के मध्य बहुत ही मधुर एवं घनिष्ठ सम्बंध था। भगवान बुद्ध ने भी आचार्य-शिष्य को परस्पर सम्मान, विश्वास तथा एकत्रित जीवन के कारण अभिन्न कहा था। आचार्यो का अपने शिष्यों के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य हो जाता था। कभी-कभी तो आचार्य अपनी पुत्रियों का विवाह शिष्यों के साथ कर देते हैं, जातकों में ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते है जब गुरू ने अपनी कन्या का विवाह अपने श्रेष्ठ शिष्य के साथ किया।[1] कभी-कभी शिष्य इस प्रकार के विवाह का विरोध भी करते थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि बौद्ध युग में भी आचार्य द्वारा शिष्य का

---

1 सिलवि भंग जातक-सं0 305, 374

रक्षण तथा शिक्षण साथ-साथ चलता था। विदेशी यात्रियों ने भी आचार्य-शिष्य की पवित्र परंपरा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जहाँ एक ओर गुरू शिष्य के मध्य मधुर सम्बन्ध थे, वहीं दूसरी ओर गुरू शिष्य के अनैतिक आचरण पर भी दण्ड की व्यवस्था थी। आचार्य-शिष्य को नैतिक आचरण में त्रुटि के लिए शारीरिक दण्ड देते थे। तिलमुथ्थिजातक, वर्मा में उत्खनन से प्राप्त मिट्टी के फलक पर बने चित्र एवं अजंता से प्राप्त चित्रों से स्पष्ट होता था कि बौद्ध कालीन शिक्षा में आचार्य शिष्य को गलतियों पर दण्ड देते थे। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में आचार्य द्वारा शिष्य को गलतियां करने पर शारीरिक दण्ड देना उचित माना जाता था।[1] वैदिक काल या उत्तरोत्तर वैदिक युग में शिक्षा पद्धति में वर्णभेद को प्रश्रय दिया जाता था। इन युगों में शूद्रों के साथ शिक्षा प्रदान करने में समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था, ब्राह्मण को ही शिक्षा प्राप्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता था चाहे आचार्य सदाचारी हो या न हो, मात्र ब्राह्मण होना श्रेष्ठ माना जाता था। शिक्षा पद्धति में ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, शूद्रों के साथ भेद-परक वातावरण था। आचार्य द्रोण तथा एकलव्य का संबंध इस दिशा की ओर संकेत करता है। जब एकलव्य को शूद्र वर्ण होने के कारण द्रोणाचार्य ने उसे शिक्षा प्रदान करने में असमर्थता जताई

---

1 तिल मुठ्ठिठ जातक-सं0 252

थी। परन्तु बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में वर्ण या जाति का प्रभाव नहीं था। वस्तुतः बौद्ध धर्म का मूलाधार समानता था इसलिए बौद्ध शिक्षा का वर्णो से प्रभावित न होना स्वाभाविक था। भगवान बुद्ध स्वयं वर्ण-भेद में विश्वास नही करते थे। 'आश्वलायन सूत्र' का भगवान बुद्ध एवं आश्वलायन का इस विषय संवाद का दृष्टान्त प्रस्तुत है जब आश्वलायन द्वारा भगवान के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित किया गया- "हे गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं- ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है अन्य वर्ण हीन हैं, ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं, ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र है, उनके मुख में उत्पन्न हुए हैं, आप इस विषय में क्या कहते हैं?

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया था कि "हे आश्वलायन! मै चारों वर्णो को शुद्ध मानता हूँ। जातिवाद ठीक नहीं है।" अतएव स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध वर्णभेद के विश्वास नहीं करते थे। भगवान के इन विचारों के कारण बौद्ध धर्म सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य था तथा बौद्धकालीन शिक्षा में वर्ण भेद का कोई स्थान नही था। बौद्ध शिक्षा सभी वर्णो को दी जाती थी। सार्वभौमिकता एवं व्यावहारिकता बौद्ध शिक्षा की प्रमुख विशेषता थी। बौद्ध शिक्षा पद्धति में व्यक्ति को गुण, आचरण, तथा कर्मो के आधार पर स्थान दिया जाता था, न कि जन्म के आधार पर। बौद्ध शिक्षा में सभी वर्ण समान थे। भगवान बुद्ध

के परम प्रिय शिष्य उपाधि नापित थे।[1] बौद्धकालीन शिक्षा मात्र भृत्यों, दासों, तथा ऋणी व्यक्तियों को प्राप्त नहीं थी क्योंकि अन्य व्यक्तियों के अधिकारों की हत्या अनुचित मानी जाती थी। शिक्षा प्रदान करने की यह व्यवस्था बौद्धकालीन शिक्षा की निजी विशेषता थी। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा प्रदान करने में आचार्य शिष्य से कोई शुल्क नहीं मांग सकता था, ऐसे कोई प्रमाण हमें नहीं प्राप्त होते हैं कि आचार्य ने शिक्षा का कोई मूल्य छात्र से माँगा हो, कहा जा सकता है, बौद्धकालीन शिक्षा निःशुल्क थी। फिर भी शिष्यों द्वारा परम्परा का निर्वाहन करते हुए आचार्यो को दक्षिणा के रूप में बहुत सा धन दिया जाता था। इस धन का उपयोग संघो, मठों, विहारों तथा विश्वविद्यालयों की व्यवस्था में व्यय होता था। गुरू दक्षिणा प्रायः शिक्षा समाप्ति के पश्चात दी जाती थी परन्तु इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि कभी-कभी धनिक शिष्यों या गृहस्थों द्वारा पवज्जा के समय अग्रिम दक्षिणा प्रदान की जाती थी।[2] जो अभिभावक दक्षिणा देने में असमर्थ होते थे, उनके पुत्र गुरू सेवा द्वारा यह मूल्य चुका देते थे या उपसम्पदा के बाद भिक्षा माँगकर दक्षिणा देते थे।[3] दक्षिणा देने की अनिवार्यता नहीं था। परन्तु गुरू-दक्षिणा की परम्परा के कारण अभिभावक या छात्र अपनी संतुष्टि के लिए

---

1 सारभंग जातक-सं0 522

2 जातक सं0 55, 61, 445, 447, 522

3 जातक सं0 48

दक्षिणा देते थे। दक्षिणा को गुरू प्रदत्त शिक्षा का मूल्य नहीं माना जाता था। गुरू प्रदत्त शिक्षा को छात्र पर ऐसा ऋण माना जाता था जिसका मूल्य चुकाना असंभव था। दक्षिणा मात्र आदर तथा श्रद्धा का प्रतीक मात्र होती थी।[1] बौद्धकालीन शिक्षा में गुरू प्रदत्त शिक्षा को अमूल्य माना जाता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में हमें परीक्षाओं का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यद्यपि विषय कंठस्थ कराने के लिए प्रतिदिन दैनिक परीक्षाओं का आयोजन होता था लेकिन यह परीक्षा पाठ को कंठस्थ कराने का अभ्यास मात्र थी, क्योंकि बौद्ध शिक्षा में एक पाठ पूर्ण होने पर ही अगले अध्याय का अध्ययन कराया जाता है, अध्याय के पूर्ण न होने पर अध्याय की पुनरावृत्ति चलती रहती थी। विद्यार्थी जब अपने सभी अध्याय पूर्णत: समझ जाता था तभी उसको पारंगत माना जाता था। बौद्ध शिक्षा पद्धति में उपाधियों या प्रमाणपत्रों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस सम्बंध में ह्वेनसांग लिखता है कि सातवीं शदी के कुछ पण्डित यश-प्राप्ति के लिए नालन्दा का नाम चुराते थे।[2] शिक्षा उपरान्त छात्र को स्नातक कहा जाता है तथा स्नातक को उसके शिक्षा केन्द्र के स्नातक नाम से जाना जाता था, जैसे तक्षशिला का स्नातक, नालन्दा का स्नातक। इसे ही उपाधि की संज्ञा दी जा सकती है। बौद्ध शिक्षा पद्धति में उपाधियों का कोई

---

1 जातक सं0 252

2 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ भाग 2 पृष्ठ 165

स्थान नहीं था। मात्र शिक्षा प्रदान करने तथा शिखा को अपने जीवन में ढालने का प्रयास किया जाता था, छात्र अपनी ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिए शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्ध शिक्षा उपदेशात्मक थी जिसमें अध्यापक को धर्म में, समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, परन्तु अध्यापक के लिए सदाचारी तथा कर्तव्यनिष्ठ होना अनिवार्य था।

प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा

बौद्ध शिक्षा में मनुष्य का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था। बौद्ध धर्म का मूलाधार दुःखों का अन्त था। निर्वाण को ही दुःखों का अन्त माना जाता था। मोक्ष की प्राप्ति के लिए या तो गहनता या साधना परमावश्यक था या ज्ञान प्राप्त करना। बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थी जीवन की आयु पच्चीस वर्ष निर्धारित थी, किन्तु कुछ उपासक जीवन पर्यन्त सतत अध्ययन में लगे रहते थे, इन उपासकों का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्त करना था। उपासक जीवन को मोहमाया से दूर रहकर ज्ञान प्राप्ति हेतु सदैव प्रयासरत रहते थे। उपासकों को एक मात्र लक्ष्य था ज्ञान प्राप्ति। ह्वेनसांग वर्णन करता है कि सारे कष्टों को भूलकर ये साहित्य और विज्ञान में अपनी प्रवीणता बढ़ाते ही रहते थे। धनिक तथा राजपुत्र भी परिब्राजक होकर भिक्षाटन कर जीवन यापन करते थे[1] तथा सत्य तथा ज्ञान में ही अपना सम्मान समझते थे, सदैव अपनी ज्ञान पिपासा की शान्ति के लिए विचरण करते रहते थे। जातकों से ज्ञात होता है कि देशाटन से भी उपासक शिक्षा प्राप्त करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा ग्रहण की यह तिथि आजीवन शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्यों के लिए ही थी। देशाटन का उल्लेख उपसम्पदा के बाद किया गया है। ये देशाटन एक प्रकार से शैक्षिक भ्रमण ही थे। वे शैक्षिक भ्रमणों से देश-काल-वातवरण, व्यवसाय,

---

1 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 160

परम्पराओं तथा विषमताओं आदि का परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान को सार्वभौमिक रूप प्रदान करता था। सतत् एवं प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता इस विचार धारा पर आधारित थी, कि संरचित अधिगम या सुसम्बद्ध रीति से सिखाने-पढ़ाने का कार्य जीवन के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए अपितु इसे आजीवन चलने वाला एक उद्यम या कार्य होना चाहिए। सतत शिक्षा का फ्रांसीसी प्रतिरूप है-"एडूकेशन परमानेन्ट" जिसकाअर्थ होता है, 'चिर शिक्षा'। इस प्रकार सतत शिक्षा इस मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी व्यक्ति की जीवन पर्यन्त शिक्षाप्राप्त करना है नवीन-नवीन अनुसंधानों का विकास कर शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार लाना है। शिक्षा में सतत तथा चिर गतिशील तत्व का समावेश हो जाता है। अर्थात् सतत शिक्षा का अर्थ "आजीवन शिक्षा" है। आजीवन शिक्षा या सतत शिक्षा मनुष्य के व्यक्तितत्व के सम्पूर्ण विकास के लिए सतत चलने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य हर प्रकार के अधिगम अनुभवों को समन्वित करना है। सतत शिक्षा ऐसा व्यापक सम्प्रत्यय है जो सभी रूपों में चलने वाली शैक्षिक क्रिया कलापों को अन्तर्निहित कर लेता है इसके अन्तर्गत औपचारिक, अनौपचारिक, प्रौढ़ शिक्षा सभी प्रकार की शैक्षिक प्रणालियां आ जाती है। क्योंकि सतत् शिक्षा मूलतः शिक्षा को ही जीवन और जीवन को ही शिक्षा समझने वाला संप्रत्यय है। व्यापक अर्थो में सतत शिक्षा एवं आजीवन शिक्षा

पर्यायवाची है और इन्हें जन्म से मृत्यु तक अविरल चलने वाले शैक्षिक प्रवाह के रूप में समझना उपयुक्त है। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में बौद्ध भिक्षु आजीवन अध्ययन प्राप्ति में संलग्न करते रहते थे क्योंकि उनके अध्ययन में विवाह जैसी कोई बाधा नहीं थी।[1] कदाचित इसी कारण इस प्रकार विद्यार्थियों के लिए पृथक पाठ्यक्रम था, वह अपेक्षाकृत विस्तृत रूप धारण किए रहते थे। बौद्ध भिक्षु सभी धर्मो के ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करते थे तथा उनके तत्वज्ञान द्वारा अपना ज्ञानवर्धन करते रहते थे। नालन्दा में बौद्ध भिक्षुकों की शिक्षा के सम्बन्ध में हुई ली लिखते हैं कि ''भिक्षु महायान शाखा, हीनयान की अठारह शाखाओं, वेद, हेतुर्विद्या, शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, सांख्य एवं अन्य साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। ''बौद्ध भिक्षुओं विशेषकर त्रिपिटक, अश्वघोष कृत बुद्ध चरित, नागार्जुन कृत जातक मात्रा, योगाचार शास्त्र का अध्ययन कराया जाता है बौद्ध भिक्षु बौद्ध दर्शन में पूर्णतः दक्ष होते थे। वस्तुतः अन्य दर्शनों के अध्ययन तथा तुलनात्मक अध्ययन उसी बुद्धि में प्रखरता उत्पन्न करता था। बौद्ध भिक्षु उपसम्पदा की विधि के पश्चात दीक्षान्त हो जाता था परन्तु इसके पश्चात भी उनकी शिक्षा सतत चलती रहती है, वे विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर अपने विषय ज्ञान समुन्नत और उत्कृष्ट करने का प्रयास करते रहते थे। गुरू-शिष्य सम्बन्ध पूर्ववत प्रगाढ़ रूप में विद्यमान रहते

---

1 एo एसo अल्टेकर, एजुकेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, वाराणसी पृष्ठ 228-29

थे। धार्मिक अवसरों पर शिष्य आचार्यों को आमंत्रित कर सम्मान करते थे उन्हें उपहार, दक्षिणा सहर्ष प्रदान करते थे। आचार्य भी अपने शिष्यों से स्वाध्याय की चर्चा कर उनकी शंकाओं का समाधान करते रहते थे।[1] दीक्षान्त के बाद भी व्यक्ति गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए भी स्वाध्यायरत रहता था। जातक कथा में लिखा गया है कि सतत शिक्षा, यद्यपि भिक्षुओं के लिए अनिवार्य थी, परन्तु जन साधारण में भी सतत शिक्षा का प्रचलन था। बौद्ध शिक्षा दर्शन में सतत शिक्षा को आजीवन शिक्षा के पर्याय के रूप में देखा जा सकता है। यह प्रचलित था कि ब्राह्मण और मित्र की हत्या से जो पाप होता है, वही पाप एक बार पढ़े हुए पाठ को विस्मृत करने से होता है, सम्भवतः इसीलिए बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षुओं के लिए आजीवन शिक्षा की कल्पना की गयी थी। वस्तुतः बौद्ध दर्शन ने इस तथ्य पर बल दिया कि परिस्थितियों के परिवर्तनशील होने से सामाजिक समरसता घटती है, अतएव सामाजिक समरसता स्थापित करने का कार्य शिक्षा कर सकती है, इसके लिए सतत शिक्षा की परम आवश्यकता है। सतत शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान या विद्या को स्थायित्व दिया जा सकता है तथा नवीन अनुसंधानों से शिक्षा में सुधार किया जाता है जिससे ज्ञान में शोधात्मक प्रवृत्ति बढ़ती है। बौद्ध शिक्षा में आचार्यों का निर्देश था कि प्रत्येक 'स्नातक' को पढ़े हुए ग्रन्थों के किसी न किसी अंग की

---

1 जातक संख्या 130

आवृत्ति प्रतिदिन नियमित रूप से करनी चाहिए, इसी को स्वाध्याय भी कहा जाता था। अतएव स्वाध्याय ही सतत शिक्षा है। उपसम्पदा के समय आचार्य स्वाध्याय में प्रमाद नकरने के लिए विशेष रूप से उपदेश होते थे। सतत शिक्षा के कारण प्रायः विद्वानों के मध्य शास्त्रार्थ, ज्ञान चर्चाएं और विद्वद्गोष्ठियां सम्पन्न होती हैं, जिसको निष्कर्षित ज्ञान का प्रभाव सम्बन्धित विद्वान के ज्ञान की वृद्धि में सहायता देता है। इन गोष्ठियों में अनेक बुद्धिमान और गुणी लोग सम्मिलित होकर ज्ञानवर्धन करते थे। बौद्ध शिक्षा में सतत शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के प्रभाव बौद्ध शिक्षा दर्शन पर स्पष्टतया पड़ा जिसके बौद्ध दर्शन सारगर्भित, धर्मनिरपेक्ष तथा सर्वग्राह्य हो गया। चीनी यात्रियों में बौद्ध धर्म दर्शन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सतत शिक्षा का प्रमुखतः प्रभाव बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार पर पड़ा, बौद्धधर्म सुदूरवर्ती देशों में भी फैल गया तथा जनसाधारण बौद्ध धर्म के प्रति विशेष निष्ठा उत्पन्न हो गयी थी।

बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार एवं प्रभाव

बौद्ध युग में शिक्षा के केन्द्र विहार, संघ एवं विश्वविद्यालय के रूप में विख्यात विशाल केन्द्र थे। बौद्ध नियमों तथा ग्रन्थों में शिक्षा देने के किन्हीं अन्य व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। धार्मिक तथा लौकिक सम्पूर्ण बौद्ध शिक्षा बौद्ध भिक्षुओं के हाथ में थी। वे ही शिक्षा के अभिरक्षक का कार्य करते थे। बौद्ध संघ तथा धर्म में दीक्षारम्भ संस्कार ब्राह्मण पद्धति से मिलता जुलता है। बौद्ध शिक्षा में पहला कदम था पवज्जा जिसका अर्थ होता है, आगे चलना यह विद्यार्थी का विद्यालय में प्रवेश होता था। संघ में प्रविष्ट होने पर सामान्य व्यक्ति को किसी गुरू की देख-रेख और अनुशासन में रहकर अध्ययनादि कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार की दीक्षा के लिए नियत न्यूनतम आयु आठ वर्ष थी, कहीं-कहीं छः या सात वर्ष में पवज्जा दी जाती थी। छात्रावस्था का काल बारह वर्ष होता था। गंभीर शारीरिक या नैतिक दुर्बलता संघ के प्रवेश में बाधा थी। प्रथम दीक्षा सरल थी, इसमें विद्यार्थियों को केश मुंडन करवाना, पीत वस्त्र धारण करना होता था, उसके बाद बुद्ध, धर्म एवं संघ इन तीनों की शरण की प्रतिज्ञा करना सम्मिलित था। बालक भिक्षु को किसी गुरू की देख-देख में रहने से पहले दस आदेश दिए जाते थे, जिनका पालन अनिवार्य था। दो प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख प्राप्त होता है, उपाध्याय

और आचार्य। उपाध्याय उच्चतर प्राधिकारी होता था और उसका उत्तरदायित्व था भिक्षु को धार्मिक ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान करना, जबकि आचार्य पर भिक्षु के आचरण को नियमबद्ध एवं नैतिक बनाने की जिम्मेदारी थी। सामान्य भिक्षु के शिक्षा-प्रशिक्षण की अवधि दस वर्ष नियत थी मेधावी छात्रों के लिए इस अवधि को घटाकर पाँच वर्ष भी किया जा सकता था। बौद्ध शिक्षा में शिष्य को शिक्षा के अंग के रूप में अपने गुरू की सेवा करने के आदेश दिए जाते थे। महावग्ग और 'मिलिन्दपन्ह' में आदर्श गुरू के पच्चीस और शिष्य के दस गुण गिनाए गए हैं। जिनका उल्लेख पूर्व में किया गया है। उपाध्याय के अधीन उतने ही नवीन शिष्य होते थे जितना कि वह संभाल सके। आचार्य शिष्यों को स्वास्थ्य, अध्ययन, शिष्टाचार, सदाचार और आत्मिक उन्नति को प्रशस्त रखने की प्रेरणा देता था। विद्यार्थियों की पाठ्य चर्चा में सुत्त, धम्म और विनय धर्म भी सम्मिलित होते थे। बौद्ध शिक्षा सामान्यता सुत्तनों (प्रवचनों) से प्रारम्भ होती थी, तत्पश्चात अभिधम्म (धर्म) की अपेक्षाकृत सूक्ष्म बातें सिखायी जाती हैं। मौखिक रीति द्वारा शिक्षण कार्य की प्रधानता थी, लेखन कला का विकास हो चुका था ललित विस्तर में चौसठ प्रकार की लिपियों का उल्लेख मिलता है, परन्तु मौखिक विधि द्वारा अध्यापन कार्य श्रेष्ठ माना जाता था। नियमित शिक्षकों के अतिरिक्त प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा जो अपने विषय के विशेषज्ञ माने जाते थे, शिक्षा दिलाने का विशेष प्रबंध किया जाता

था, उपालि भी इस प्रकार का विद्वान था जो विनय ग्रन्थों के विशेषज्ञ के रूप में जाना जाता था। शिक्षा के साधन के रूप में धार्मिक प्रवचनों को सुनना बौद्ध शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता थी। विचार-विमर्शों तथा वाद विवादों पर भी बल दिया जाता था, इनसे बौद्ध संघ की लोगों को बौद्ध धर्म में शिक्षा-दीक्षा की गतिविधियों को अभिप्रेरणा प्राप्त होती थी। समय-समय पर पाप स्वीकृति के लिए किए जाने वाले धार्मिक समारोह भी, जिनमें भिन्न-भिन्न विहारों से भिक्षु आकर एकत्रित होते थे, शैक्षणिक विचार विमर्श के लिए वाक्पीठ का काम देते थे। बौद्ध दर्शन में शिक्षा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु जो समकालीन विद्वानों से किसी भी दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं थे, ने बौद्ध साहित्य पर विभिन्न ग्रन्थों की रचना कर बौद्ध दर्शन को उत्कृष्टता दिखलाई। बौद्ध दर्शन इतना समुन्नत हो गया था कि विदेशों से बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में अध्ययनार्थ विदेशी छात्रों का आगमन होता था। बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ जिसका प्रमुख कारण बौद्ध शिक्षाएं थीं। बौद्ध शिक्षा भारत के एक कोने से आरम्भ होकर भारत की सीमाओं को लाँघता हुआ लंका, वर्मा, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, चम्पा, चीन, जापान, स्याम आदि को पार करके मध्य एशिया तक जा पहुंचा। बौद्ध शिक्षाओं ने विदेशों पर गहरी छाप छोड़ी इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

1. बौद्ध धर्म की शिक्षाओं की सरलता ही इसका प्रमुख कारण है। बुद्ध की जीवन सम्बन्धी दार्शनिकता साधारणतया नियमों पर आधारित थी। इसकी शिक्षाओं में वैदिक कालीन शिक्षाओं की तरह धन और पुरोहित की व्यवस्था नहीं थी। इस कारण बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार तीव्र प्रभाव से हुआ।

2. बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में दार्शनिकता तथा भाषा सरल तथा सुगम थी। बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति में भाषा जनभाषा थी जिससे सामान्य जनता के लिए भी बौद्ध शिक्षा ग्राह्य हो गयी।

3. बौद्ध दर्शन जाति प्रथा का विरोधी था। इस धर्म के दरवाजे सभी के लिए खुले थे, बौद्ध शिक्षा प्राप्त करने के लिए सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार किया जाता था। बौद्धकालीन शिक्षा में वैश्यों और शूद्रों ने बढ़ चढ़ कर विद्या अध्ययन किया, समानता का व्यवहार अपनाने से बौद्ध शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ।

4. वैदिक कालीन शिक्षा को ब्राह्मणों द्वारा खर्चीला बना दिया गया, नए नए कर्मकाण्डों तथा नवीन धार्मिक नियमों की बहुलता वैदिक शिक्षा के प्रति जनसाधारण को शिक्षा प्राप्ति से वंचित कर देती थी। परन्तु बौद्ध शिक्षा निःशुल्क तथा कर्मकाण्डरहित थी। बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गत जहाँ किसी

भी वर्ण का, निर्धन-धनी शिक्षा प्राप्त कर सकता था, वहीं शिक्षा प्राप्ति के बाद अध्यापन कार्य भी कर सकता था। बौद्धकालीन शिक्षा में किसी भी प्रकार का बंधन न होने से बौद्ध शिक्षा सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य हो गयी।

5. बौद्धकालीन मठों, विहारों, एवं संघों ने बौद्ध शिक्षा का प्रसार-प्रचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मठों, विहारों तथा संघों में शिक्षा अत्यधिक अनुशासनबद्ध वातावरण में निष्पक्षता के साथ विद्वान एवं सदाचारी आचार्यो द्वारा प्रदान की जाती थी इस कारण बौद्ध शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ।

6. बौद्धकालीन शिक्षा का स्वरूप व्यवसायपरक भी था जिससे शिक्षा का महत्व बढ़ा और जनसाधारण ने इसे उपयोगी जानकर शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक समझा।

7. बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षा के उद्देश्यो के अनुरूप शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया था। जहां एक पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे गये थे, जिनसे आध्यात्मिकता का विकास होता था, वहीं दूसरी ओर व्यवसायपरक शिक्षा दी जाती थी, ताकि विद्यार्थियों का भविष्य सुरक्षित रहे। शिक्षा को व्यापक स्वरूप देने के कारण बौद्ध शिक्षा का प्रभाव बढ़ा।

8. बौद्धकालीन शिक्षा ने विद्यार्थियों को दार्शनिक विवेचना के जाल में नहीं फंसाया अपितु जो छात्र दार्शनिक विवेचना में पारंगत होना चाहता था, उसे दार्शनिक विवेचना द्वारा पूर्ण ज्ञान कराया जाता था, जनसाधारण के लिए दर्शन के कठिन तथा क्लिष्ट रहस्यों का ज्ञान आवश्यक नहीं था, जन साधारण विवेकानुसार अपनी क्षमतानुसार विषय चुनकर शिक्षा ग्रहण कर सकता था। इस कारण बौद्ध शिक्षा का प्रसार हुआ।

9. बौद्ध शिक्षा व्यवहारिक थी, बौद्ध शिक्षा निरर्थक दार्शनिक वाद विवाद में नहीं उलझी, जिसका सामान्य जीवन से सम्बन्ध नहीं था। आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक विवेचन से हटकर बौद्ध शिक्षा में सांसारिक समस्याओं की ओर ध्यान दिया, जिससे जन सामान्य में बौद्ध शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा।

10. अश्वघोष, नागार्जुन, बुद्धघोष, असंग, वसुवन्धु, बुद्धपाण, दिग्नाग, धर्मकीर्ति आदि जैसे महान विद्वान एवं ज्ञानियों ने अपने ज्ञान द्वारा बौद्धकालीन शिक्षा के प्रसार में चार चांद लगा दिए।

11. प्रारम्भ में भगवान बुद्ध द्वारा संघ में स्त्री प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाया था, कालान्तर में भगवान ने स्त्री को संघ में प्रवेश की अनुमति दी, तथा पबज्जा संस्कार की अनुमति देकर स्त्री शिक्षा की अनुमति दी,

परिणामतः स्त्रियां भी बौद्ध शिक्षा के प्रति आकृष्ट हुई तथा शिक्षा प्राप्त कर अपनी हीन होती जा रही स्थिति को रोक दिया तथा शिक्षा प्राप्त कर समाज में सम्माननीय स्थान पाया।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति ने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के साथ-साथ धर्म व नैतिकता पर सकेन्द्रित शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। यह शिक्षा मुख्यतः धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित होती थी। इस परम्परा का विस्तार बौद्ध धर्म की स्थापना से ही आरम्भ हो गया किन्तु धर्म आधारित शिक्षा में धर्म सिद्धान्तों का संकेन्द्रण अधिक रहता है। इसलिए सम्राट अशोक ने धम्म महामात्य स्त्री धम्म महामात्य एवं ब्रजभूमिक अधिकारियों की नियुक्ति करके धम्म उपदेशों का विस्तार किया। इन मूल प्रयोजन जनमानस का नैतिक उत्थान करना था। इसी लोकप्रिय विचारधारा की प्रस्तुति दीर्घ शिलालेखों व स्तम्भलेखों में होती है। अशोक के उपरान्त सातवाहन, कुषाण, गुप्त, गुप्तोत्तर पल्लव, राष्ट्रकूट व चोल शासकों ने ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अग्रहार व ब्रह्मदेय संस्थाओं को मजबूत किया। इनका मूल प्रयोजन शिक्षा, सामाजिक नैतिकता एवं दायित्वपूर्ण समाज को बनाये रखना था। इनका सकारात्मक परिणाम यह रहा है कि समाज में अशान्ति व अनैतिकता कम रही । महत्वपूर्ण यह रहा है कि अग्रहार व ब्रह्मदेय दानग्रहीता, बौद्ध व ब्राह्मण धर्मो से सम्बन्धित थे। धीरे-धीरे इनके द्वारा प्राथमिक शिक्षा का भी विस्तार किया गया। इसी विचारधारा का बाद में सूफी खानकाओ एवं मदरसों ने भी स्वीकार किया। हालांकि इनमें धर्म

तत्व की प्रधानता रही। इनके अतिरिक्त बौद्ध मठ व विहार भी शिक्षा के लिए जाने जाते थे। इनका मूल प्रयोजन विशाल भिक्षु वर्ग को बनाना था जो धर्म व उससे जुड़े सिद्धान्तों का अनवरत् संरक्षण कर सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध शिक्षा सर्वसुलभ थी, इसमें धार्मिक कर्मकाण्डों, एवं वर्णभेद की कोई जगह नहीं है। धनी-निर्धन स्त्री पुरूष सभी को समान मानकर शिक्षा प्रदान की जाती थी जिसके कारण बौद्ध शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है, बौद्ध शिक्षा का माध्यम जनभाषा होने के कारण बौद्ध शिक्षा का प्रचार-प्रसार सर्वत्र हुआ। बौद्ध धर्म विदेशों में फैलने लगा, सुदूरवर्ती देशों में भी बौद्ध शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ जो आज भी विद्यमान है। बौद्धकालीन शिक्षा का विस्तार जनसाधारण के मध्य तीव्र गति से हुआ। बौद्ध शिक्षा अपनी सरलता का जनसाधारण पर अत्यधिक प्रभाव डाला। बौद्ध शिक्षा का प्रभाव न केवल जन सामान्य पर था अपितु अनेक राजपरिवारों, राजाओं, धनी व्यक्तियों पर भी बौद्ध शिक्षा का प्रभाव पड़ा। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में अनेक राजपरिवार, कुलीन तथा धनी परिवार अपने पुत्रों को शिक्षा प्रदान कराने हेतु उत्सुक रहते थे। बौद्ध शिक्षा के सतत रूप ने देश में एक नवजागरण का वातावरण पैदा कर दिया। इस प्रकार हम पाते है कि बौद्ध शिक्षा का समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिससे बौद्ध धर्म का विस्तार जनसाधरण में तीव्र गति से हुआ।

****

पंचम् अध्याय

स्त्री शिक्षा एवं सहशिक्षा का परिचय

स्त्री शिक्षा का विकास

सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक एवं मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरूषों के सदृश थी। वे अपना मनोकूल आत्मविश्वास और उत्थान कर सकती थीं। उन्हें शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा एवं श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय मे उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माँ के रूप में किए जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर मध्य युग तक अनेक उतार चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप परिवर्द्धन होते रहे हैं। यह सही है कि वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी, किन्तु परवर्ती काल में उनकी स्थिति में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया जो अवनति के रूप में बाद के समयों तक चलता रहा। पुरूषों की तुलना में स्त्रियों को समाज में श्रेयस्कर स्थान नही मिला, बल्कि अपेक्षाकृत निम्न स्थान ही प्राप्त हुआ। जिसके प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता ही थे। साथ ही जैविकीय और मानसिक दोष की भी चर्चा की गयी जो पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक रहा है। वैदिक युग शिक्षा के क्षेत्र में उसका स्थान पुरूषों के समकक्ष था। शिक्षिता कन्या की प्राप्ति के

लिए विशेष अनुष्ठान की आयोजना की जाती थी। पुरूषों की तरह वह भी ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती हुयी शिक्षा ग्रहण करती थी और अपने को विदुषी बनाती थी। उस युग के जो स्त्री पुरूष शिक्षित थे, वे विवाह-योग्य उत्तम समझे जाते थे। ऐसी भी स्त्रियां थीं जो एकनिष्ठा के साथ जीवन पर्यन्त विद्याध्ययन में लगी रहती थीं और ब्रह्मवादिनी कही जाती थी। लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिक्ता, घोषा आदि ऐसी पंडिता स्त्रियां थीं, जो शिक्षा, ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी अग्रणी थीं। 'ब्रह्मयज्ञ' में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमें सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषियों के भी नाम लिए जाते हैं जिनकी प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के समान थी। वैदिक युग में स्त्री-शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी वह पुरूषों के समकक्ष बिना भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करती थी। उसे यज्ञ-सम्पादन और वेदाध्ययन का पूर्ण अधिकार था। दर्शन और तर्कशास्त्र में भी स्त्रियां निपुण थीं। सभी सभा गोष्ठियों में वे ऋचाओं का गान किया करती थीं। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि कतिपय विदुषी स्त्रियों ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के प्रणयन में योगदान प्रदान किया था। उस युग में बौद्धिक योगदान करने वाली ऐसी बीस कवयित्रियाँ थीं। रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, घोषा, लोपमुद्रा आदि पंडिता स्त्रियां इनके अधिक प्रसिद्ध है। सूत्र काल तक भी स्त्रियां यज्ञ सम्पादित किया करती थीं। वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे, एक सद्योवधू और दूसरी ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएं थीं जो विवाह के पूर्व तक कुछ वेदमंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं

का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। तथा ब्रम्हवादिनी वे थीं जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देती थीं। बौद्ध युग में स्त्रियां प्राय: शिक्षित और विद्वान हुआ करती थीं। विद्या दर्शन, और धर्म के प्रति उनकी अगाध रूचि होती थी। बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवयित्रियों में उन आजीवन ब्रह्मचारिणी और 18 विवाहित विसुणियाँ थीं।उनमें शुभा, सुमेधा और अनोपमा उच्चवंश की कन्याएं थीं, जिनसे विवाह करने को राजकुमार और संपतिशाली सेठों के पुत्र उत्सुक थे। भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री थीं जिसकी विद्वता की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। संयुक्त निकाय से ज्ञात होता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने के लिए प्रसिद्ध थीं। राजगृह के संपत्तिशाली सेठ की पुत्री भद्राकुण्डकेशा अपनी विद्या और ज्ञान से सबकों आकृष्ट करती थी। ये उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि उस युग में साधारणत: स्त्रियां ज्ञान पिपासु थीं तथा उसके अन्वेषण और प्राप्ति में तल्लीन रहती थीं। ब्रह्मचर्य का जीवन यापन करके वे अत्यन्त मनोनिवेश पूर्वक ज्ञानार्जन करती थीं। एक जातक से ज्ञात होता है कि एक जैन पिता की चार पुत्रियों ने देश का भ्रमण करते हुए लोगों को दर्शनशास्त्र पर वाद-विवाद करने के लिए चुनौती दी थी। अनेक स्त्रियां शिक्षिका बनकर अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत करती थीं, जो अपना शिक्षण कार्य उत्साह और लगन के साथ निष्ठापूर्वक सम्पन्न करती थीं, ऐसी स्त्रियां उपाध्याया कही जाती थी। ये उपाध्याया छात्राओं को पढ़ाया करती थीं। तथा उन्हें अन्यान्य विषयों का ज्ञान

प्राप्त कराती हैं। इनकी अलग शिक्षा-शालाएं हुआ करती थीं जहां महिलाएं जाकर शिक्षा ग्रहण करती थीं।ऐसी महिला शिक्षण संस्थाओं का प्रबन्ध उपाध्याएं ही करती रही हैं। स्त्री शिक्षा के समाज में कोई प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। यत्र तत्र बिखरे हुए प्रमाणों तथा बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त अप्रत्यक्ष उल्लेखों के आधार पर बौद्ध शिक्षा-दर्शन में स्त्री शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित किया जा सकता है। आरम्भ में तो गौतम बुद्ध स्वयं स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीन जान पड़ते हैं। जिस समय इनकी विमाता तथा पालक महाप्रजापति देवी ने कपिलवस्तु में आकर एक भिक्षुणी के रूप में संघ प्रवेश करने की अनुमति महात्मा बुद्ध से प्राप्त करनी चाही थी तो बुद्ध ने उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी थी। महात्मा बुद्ध स्त्रियों को संघ-प्रवेश की अनुमति देने के पक्ष में नहीं दिखलाई पड़ते थे, वे स्त्री के चंचल स्वभाव को विस्मृत नहीं करना चाहते हैं, सम्भवतः उन्हें बुद्ध धर्म में उनका आगमन संशयात्मक दिखाई पड़ता था। परन्तु कालान्तर में उन्हें अपने इस नियम में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हुई, क्योंकि जब बुद्ध वैशाली में रूके थे, महाप्रजापति ने पुरूष वेष धारण करके अनेक शाक्य स्त्रियों को साथ में लेकर रोती हुई संघ प्रवेश की अनुमति भगवान बुद्ध से पुनः चाही और भगवान बुद्ध के परमप्रिय शिष्य आनन्द ने महाप्रजापति की प्रबल सिफारिश की। हालांकि बुद्ध ने नारी को ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र व सहिष्णु के रूप में स्वीकार किया। बुद्ध की शिष्याओं में कई ऐसी महिलाएं थीं जो मानसिक एवं दैहिक दुःखों जो मावीय अस्तित्व के यथार्थ हैं,

से पूर्ण मुक्त होकर अर्हत् बनीं। कुछ भिक्षुणियों की अपनी खुद की शिष्याएं थीं और वे न केवल धम्म के प्रतिपादन में सक्षम थी, बल्कि बुद्ध या उनके कुछ दूसरे वरिष्ठ भिक्षुओं की मध्यस्थता के बिना भी दूसरी प्रतिभगिनियों को पूर्ण मुक्ति दिला सकती थीं। यह मानने के पर्याप्त प्रमाण हैं कि सबसे आरम्भिक मठीय समूह में महिलाएं न केवल स्पष्ट रूप से उपस्थित थीं, बल्कि कर्ता व शिक्षक के रूप में भी उन्हें प्रमुख व सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बुद्ध ने भिक्षुणी-संघ की स्थापना करके महिलाओं के लिए क्षितिजों को खोला। महिलाओं के लिए यह सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति उस समय की दृष्टि से काफी आगे थी और इसलिए पुरूषों, विशेषकर भिक्षुओं, ने इस पर गम्भीर आपत्ति की होगी। लेकिन बुद्ध के प्रभावी व शक्तिशाली व्यक्तित्व ने ऐसी आपत्तियों को पास नहीं फटकने दिया होगा। हमारे विचार में, महाप्रजापति गौतमी से सम्बन्धित आठ नियमों सहित कई प्रतिबन्ध व प्रतिकूल परिस्थितियां, जिनका संदर्भ आरम्भिक बौद्ध साहित्य में मिलता है। बुद्ध की मृत्यु के बाद महिलाओं पर थोपी गयी थीं और इस प्रकार ये महापरिनिर्वाण के बाद के काल के क्षेपक थे। कई प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों व उत्पीड़नों के होते हुए भी विहारों में शिक्षा और खाली समय की सुविधा के साथ-साथ व्यक्तिगत नैतिक सर्वोच्चता की भावना ने अनेक महिलाओं को एक संगठित जीवन की अज्ञात संभावनाओं की ओर प्रेरित किया होगा। विहारों में महिलाएं घर से बाहर की गतिविधियों में सक्रिय हो सकती थीं

जैसे-धर्म प्रचार, संगठनात्मक कौशलों का विकास, और तो और ऐसा वातावरण जिसमें वे अपनी उपलब्धियों का अनुभव कर सकती थी। दुर्भाग्यवश भिक्षुणी-संघ ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह सका।

बुद्ध की मृत्यु के बाद कम से कम जहां तक महिलाओं का प्रश्न है, एक शून्य उत्पन्न हुआ। बुद्ध जैसे महान व्यक्तित्व के अभाव में आनंद जैसे महिलाओं के मुट्ठी भर बचे समर्थकों को संघ के उन भीतरों तत्वों ने अभीभूत कर दिया जो महिलाओं के प्रवेश को एक अपमान की बात मानते थे। यह राजगृह में आयोजित पहली बौद्ध संगीति ने विशेष रूप से मुखर हुआ जहां संघ में महिलाओं के प्रवेश के लिए आनन्द को उत्तरदायी ठहराकर उनकी कड़ी आलोचना की गयी। महापरिनिर्वाण उत्तरोत्तर काल में बौद्ध संघ एक ऐसी संस्था बन गया जिस पर एक बड़े शक्तिशाली उभय केन्द्रित पितृसत्तात्मक शक्ति-ढाँचे (indrocentric patriatichal power structure) का प्रभुत्व था। इस तरह की मानसिकता के द्वारा बौद्ध साहित्य का सम्पादन व संशोधन किया गया। काल के उसी चक्र में बौद्ध संघ ने ब्राह्मण वाद के महिला-विरोधी रूख को गले लगाया जिसने लगातार महिलाओं को अपूर्ण, दुष्ट, नीच, कपटी, विध्वसंक, विश्वासघाती, नमकहराम, अविश्वासी, चरित्रहीन, गिरी हुई, कामुक, ईष्यालु, लालची, बेलगाम, मूर्ख, फिजूलखर्चीली जैसे विशेषणों से विभूषित किया गया था। इस रुख से यह विश्वास सशक्त हुआ कि महिलाएं पुरूषों द्वारा कुचली, नियंत्रितव विजित की जाएँ इस प्रकार

के तर्क ने भिक्षुणी-संघ के अस्तित्व को प्रत्यक्षतः जड़ से उखाड़ फेंका और महिलाओं के अस्तित्व को हाशिए पर ला खड़ा किया।[1]

अन्ततः भगवान ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति दे दी, इससे सामन्तों, श्रेष्ठों एवं उच्च वर्ग की बालिकाओं का उच्च शिक्षा विशेषतया दर्शन, साहित्य, की शिक्षा प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। आनन्द द्वारा नारी-प्रवण्या की प्रार्थना की गई तथा यह तर्क दिया गया कि स्त्रियाँ भी आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं। भगवान ने स्त्रियों को सशर्त संघ प्रवेश की अनुमति दे दी। भगवान बुद्ध ने स्त्रियों के संघ-प्रवेश पर निम्नलिखित आठ शर्तें लगा दीं-

1. भिक्षुणियां जमणों का आदर करेंगी।
2. अभिक्षुकाल में भिक्षुणियों का वर्षावास नहीं होगा।
3. प्रत्येक पखवारे में भिक्षुणियां भिक्षुसंघ से उपोयथ प्राप्त करेंगी।
4. वर्षावास के अनन्तर भिक्षुणियों को दोनोंसंघों में दृष्ट, श्रुत और परिशंकित तीनों स्यानों से प्रवारणा करनी पड़ेगी।
5. भिक्षुणियां दोनों संघों में पक्षमानता करेंगी।
6. दो वर्ष के अन्तर्गत छः धर्मो में शिक्षित होकर भिक्षुणी दोनों संघों में उपसम्पदा की प्रार्थना करनी पड़ेगी।

---

1. प्रो0 के0टी0एस0 सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म - उद्भव, स्वरूप और पतन ।

7. भिक्षुणी को आक्रोश-परिभाषण नहीं करना होगा।

8. भिक्षुओं के सम्बन्ध में कुछ कहने का मार्ग भिक्षुणियों के लिए निरूद्ध होगा।

इस प्रकार से आठ शर्त लगाते हुए भगवान बुद्ध ने आनन्द से कहा, कि हे आनन्द, यदि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग कर तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा विनय के अनुसार प्रवज्या करने की अनुमति नहीं दी गयी होती तो यह विशुद्ध धर्म चिरस्थायी होता। हे आनन्द, अब स्त्रियों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया, अतः यह विशुद्ध धर्म, आनन्द, अब मात्र पांच सौ वर्षो तक स्थिर रह पायेगा।

भिक्षुणियों के लिए छः शिक्षापदों का निर्देश दिया गया जो पूर्णतः वर्जित थे, हिंसा, चोरी, ब्रह्मचर्यहीनता, मृषावाद,मद्यपान और विकाल भोजन। उनके चार अपराध बताए गए-काम के वशीभूत पुरूष का घुटने से ऊपर पैर दबाना, काम से पुरूष का स्पर्श या एकान्त में साथ, संघ से निष्कासित भिक्षु का अनुसरण तथा किसी अन्य भिक्षुणी के पाराजिक अपराध को छिपाना। भिक्षुणियों के संघादि शेष सत्रह अपराध निर्दिष्ट हैं-पुरूष के साथ भ्रमण, अकेले भ्रमण करना, संघ से निष्कासित भिक्षुणी का अनुगमन, आसक्तिपूर्वक पुरूष के हाथ से भोजन प्राप्त करना या दूसरी भिक्षुणी को इसके लिए उत्साहित करना, चोर को दीक्षा देना, त्रिरत्न का प्रत्याख्यान करना, संघ की निन्दा करना, कुसंग या कुसंग के लिए प्रेरित करना, सीख न लेना, कुलों को बिगाड़ना, कुटनी बनना, निर्मूल या लेश मात्र से किसी पर पाराजिक का आरोप लगाना।

इन शर्तो एवं प्रतिबन्धों के होते हुए भी अनेक स्त्रियों ने संघ में प्रवेश किया और आजीवन अध्ययन करते हुए भिक्षुणी जीवन व्यतीत किया। प्रमुख भिक्षुणियों में महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा, नन्दा, खेमा, आम्रपाली एवं विशाखा उल्लेखनीय हैं। गौतमी बुद्ध की मौसी थीं। आनन्द के कहने से बुद्ध ने इन्हें संघ में दीक्षित करने का निर्णय लिया था और तभी से संघ में स्त्रियां भी भिक्षुणयां बनने लगी। यशोधरा बुद्ध की पत्नी थीं जिन्होंने प्रवज्या ग्रहण की थी तथा संघ के नियमों के अनुपालन का आश्वासन दिया था। नन्दा गौतमी की पुत्री तथा बुद्ध की बहन थीं। खेमा मगध नरेश बिम्बसार की रानी थीं, जिन्होंने बौद्ध धर्म दर्शन के उन्नयन में अपना योगदान प्रदान किया था। आम्रपाली गणिका थी जिसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। विशाखा अंग जनपदके भादिद्रय ग्राम के श्रेष्ठि की पुत्री थी।इसने अपना धन बौद्ध संघ को दान में दिया था, जिससे श्रावस्ती में पूवीराम बिहार का निर्माण हुआ था। विशाखा बौद्ध संघ की संरक्षिका बन गई। ये भिक्षुणियां आजीवन दर्शन की शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा बौद्ध धर्म के उन्नयन में योगदान करती थीं। विशाखा का बौद्ध संघ की संरक्षिका नियुक्त होना उसकी विद्वता का प्रमाण है।कालान्तर में सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा तथा सम्राट हर्ष की बहन राज्यश्री ने भी बौद्ध धर्म की उन्नति में महान योगदान दिया था। संघमित्रा ने श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भ्रमण किया था वह बौद्ध दर्शन का विशिष्ट ज्ञान रखती थीं। तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार दो राजकुमारियों द्वारा किया गया तथा ल्हासा में अनेक मठों की स्थापना की। इस प्रकार

सम्राट अशोक ने दक्षिण के विभिन्न तमिल राज्यों, वर्मा, सीरिया, मिश्र, मकदूनिया, चीन एवं जापान आदि देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ बौद्ध भिक्षुणियों को भेजा था। इस प्रकार बौद्ध संघों ने स्त्रियों को शिक्षा प्रदान कर उनकी आध्यात्मिक उन्नति में योगदान किया था। ब्रह्मवादियों के सदृश बौद्ध धर्म में भी बहुत सी स्त्रियाँ दर्शन एवं धर्म के आर्यसत्यों के साक्षात्कार के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करती थीं, उनमें से कुछ तो सिंहल जैसे दूर देशों में भी गई थीं। वहाँ के बौद्ध आगमों की महान शिक्षिकाओं के रूप में उनकी बड़ी ख्याति है। थेरीगाथा की कवयित्रियों में विश्वास है कि इन्हें निर्वाण भी प्राप्त हो गया था, 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी तथा 18 विवाहित भिक्षुणियां थीं। इन ब्रह्मचारिणियों में शुभा, अनुपमा, सुमेधा आदि उच्च अभिजात कुलों की कन्याएं थीं। इनकी विद्वता से मोहित होकर कतिपय राजकुमार एवं श्रेष्ठीसुत इनसे पाणिग्रहण के लिए उत्सुक रहते थे।[1] जब इतनी अधिक संख्या में स्त्रियां धर्म एवं दर्शन का अध्ययन करती थीं तथा आजीवन ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करती थीं तो साधारण शिक्षा एवं योग्यता तो समाज के लगभग सभी स्त्रियों में रही होगी। इस प्रकार यह सत्य है कि आरम्भ में स्त्रियों को संघ प्रवेश कठिनाई से मिला, किन्तु यह भी सत्य है कि संघ में प्रवेश के पश्चात् उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार अवश्य हुआ। समाज में कुछ ऐसी परिब्राजकाएं थीं जो बौद्धिक जीवन व्यतीत करती थीं और उच्च दार्शनिक चिन्तन एवं मनन में अपनेसमय का सदुपयोग करती थीं। ये

---

1 हार्नर, वीमेन अण्डर प्रीमिटिव्ज बुद्धिज्म, दूसरा अध्याय

परिब्राजकाएं कुलीन एवं सुशिक्षित होती थीं ओर अपने आध्यात्मिक विकास के लिए संसार का परित्याग कर देती थीं। भिक्षुणी खेमा इसी कोटि की विदुषी थीं जिसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुयी थी।

बौद्धिक रूप से प्रखर स्त्रियों को दर्शन के अतिरिक्त संगीत तथा नृत्य, चित्र-लेखन आदि ललित कलाओं की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। ऐसी बात नहीं कि बौद्ध-युग के पूर्व जन-जीवन में संगीत और ललित कला का कोई स्थान नहीं था, अवश्य था, परन्तु उसका विकास-क्रम मन्द था। समाज में धीरे-धीरें उसका स्थान बन रहा था। बौद्ध-युग में तो नगर का उल्लास और विलास गणिकाओं के संयोग से ही मुखरित होता था। नगर की सुन्दरता और शोभा उनकी उपस्थिति से ही आलोकित होती थी। राज नर्तकियों को राज्य की ओर से सम्मान और आदर प्राप्त होता था। इन श्रेष्ठ नर्तकियों के साथ सुन्दर तथा संगीत, नृत्यकला में दक्ष अन्य नर्तकियां होती थीं, जो इनके दल की शोभा बढ़ाती थी। इनका रहन-सहन उच्च स्तरीय था। राज्य की ओर से किसी गणिका का 'गणिकाभिषेक' किया जाना अत्यधिक सम्मान और गौरव का विषय था। इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में चार चाँद लगते थे। उच्चाधिकारी एवं अभिजात वर्ग न केवल इनके प्रति आकृष्ट था बल्कि इनकी कला का यथोचित सम्मान करता था।[1] भगवान बुद्ध ने अम्बपाली का निमंत्रण और आतिथ्य स्वीकार किया था।[2] गणिकापुत्र का भी समाज में सम्माननीय

---

1 जातक- 4, 240, 5, महावग्ग : 6. 30. 1, 6.30.5

2 महावग्ग 6.30.1

स्थान था। गणिका सालवती का पुत्र जीवक प्रसिद्ध राजवैद्य था।[1] इसी प्रकार गणिकाओं के सम्बन्ध में अनेक कथाएं जातकों में है, जिसमें इनकी मानवता, सहृदयता, कोमलता, धनाढ्यता, क्रूरता, छुद्रता एवं विद्वता का बोध होता था।[2] ललित कला के अतिरिक्त स्त्रियाँ अन्य विषयों की भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। जातक कथाओं में 'अमरा' नामक एक स्त्री को वार्तालाप और व्यापार सम्बन्धी कार्यों में अत्यन्त कुशल बताया गया है, वह पत्ती पर भी लिखने में दक्ष बताई गयी है। एक अन्य जातक में 'उदम्बरा' नामक रानी का उल्लेख मिलता है जो लिखने व पढ़ने में कुशल थीं।[3] ह्वेनसांग के कथन से ज्ञात होता है[4] कि स्थिरमति ओर गुणमति नालन्दा में अपने लेखन शैली के लिए प्रसिद्ध थीं। गुणमति ने एक ग्रंथ की रचना की थी जिसका अनुवाद चीनी भाषा में वर्ष 560 ई0 में परमार्थ ने किया, स्थिरमति ने बसुबन्धु का शिष्यत्व ग्रहण किया, परन्तु इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है।[5] सुप्रसिद्ध सम्राट हर्ष जो बौद्ध धर्म एवं दर्शन का प्रकाण्ड विद्वान एवं आश्रयदाता भी था, ने अपने परम प्रसिद्ध ग्रंथ प्रियदर्शिका[6] में एक स्त्री परिब्राजक का उल्लेख किया है जो एक नाटक की लेखिका थी। हर्ष की प्रियदर्शिका में गीत, नृत्य में कुशल एवं वाद्य में प्रवीण स्त्रियों का चित्रण है-

'गीत नृत्य वाद्यादिषु विशिष्ट कन्यकोचित सर्प शिक्षयित्वा'

---

1 महावग्ग 8.1.3

2 जातक संख्या 4, पृष्ठ 249, सं0 2 पृष्ठ 38, सं0 3 पृष्ठ 435-48, सं0 3 पृष्ठ, 475-76 कर्णेश्वर जातक, संख्या 318, सुलप्ता जातक सं0 419

3 आर0एन0मेहता- प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, बेस्ड आन जातक पृष्ठ-277

4 वाटर्स- आन ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया भाग-2, पृष्ठ 109

5 इत्सिंग- बुद्धिस्ट प्रैक्टिसेस इन इण्डिया, लंदन पृ0 58

6 आर0एन0 मेहता- पूर्वोक्त ग्रंथ पृष्ठ 277

पुनः हर्ष की प्रियदर्शिका में अरण्यिका नामक एक युवती के वीणावादन की अत्यधिक प्रशंसा की गयी है।[1] हर्ष की 'नागानन्द'[2] में संगीत कुशल मलयवती का उल्लेख है। हर्ष की 'रत्नावली' में 'सागरिका' नाम की एक स्त्री का वर्णन है, जो चित्रकारी आदि के लिए तूलिका आदि का प्रयोग करती थी,[3] एक कुशल चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध थी। स्वयं सम्राट हर्ष की बहन राज्यश्री अनेक प्रकार की शस्त्र कलाओं के अतिरिक्त गीत एवं नृत्यकला में निपुण थीं। राज्यश्री ने बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा दिवाकर मित्र से प्राप्त की थी।[4] अनुमानतः अन्य बहुत सी स्त्रियां भी बौद्ध भिक्षुणियां होती थी जिन्हें बौद्ध सिद्धान्तों एवं बौद्ध-धर्म-दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन अवश्य कराया जाता रहा होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म में व्याप्त शिक्षाओं तथा उपदेशों ने स्त्री शिक्षा का विशेषतः प्रोत्साहित किया तथा उनकी सामाजिक स्थिति में स्थान उच्चीकृत करने का प्रयास किया।

महिलाओं के प्रति प्राचीन बौद्ध धर्म के दृष्टिकोंण को मूल्यांकित करते समय इस पर विचार करना आवश्यक है कि उपलब्ध साहित्य का अधिकांश भाग बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा लिखा गया है। जिनमें भिक्षुणी संघ व उनके अधिकारों को लेकर आक्रोश भी प्राप्त होता है। इसलिए इनके द्वारा भिक्षुणियों के प्रति कठोरता के भाव

---

1 हर्ष-प्रियदर्शिका, अंक 4, पृष्ट 62

2 हर्ष नागानन्द, अंक 1 पृष्ठ 15

3 हर्ष-रत्नावली, (एस0आर0 शास्त्री का अंग्रेजी अनुवाद) अंक 2, पृष्ठ 33

4 बाण-हर्ष चरित, (क्राउबेल का अंग्रेजी अनुवाद) पृष्ठ 12

भी अभिव्यक्त किये गये। महत्वपूर्ण यह है कि बुद्ध के महा परिनिर्वाण के बाद बौद्ध संघ पर महाकस्सप के नेतृत्व में ब्राह्मण पुराहितों का वर्चस्व बढ़ गया था। इससे ब्राह्मण धर्म के रूढ़िवाद भी संघ में मान्य होने लगे थे। जिनमें महिलाओं को धार्मिक अधिकार से वंचित करना भी था, क्योंकि उत्तर वैदिक यज्ञ वैदिक व्यवस्था महिलाओं के अधिकार को स्वीकार नहीं करती। शतपथ ब्राह्मण में वर्जित है कि महिलाओं का विवाह ही इनका उपनयन है अर्थात् शिक्षा से वंचित करके ज्ञान व वाद-विवाद की व्यवहारिक पृष्ठभूमि समाप्त हो जायेगी। व्यक्तिगत रूप से बुद्ध ने संघ के भीतर महिलाओं को पुरूष के समान दर्जा दिया। प्रो0टी0 एस0 सराओ "प्राचीन भारतीय बौद्ध साहित्य में पाये जाने वाले महिला विरोधी वक्तव्य विहार के विशिष्ट वर्ग के उन सदस्यों के द्वारा बुद्ध वचन में जोड़े गये छेपक है जिनके महिलाओं के प्रतिरूप को कम से कम कुछ सीमा तक विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों ने आकार प्रदान किया।" [1]

---

1. Jose Ignacio Cabezon (ed.) Buddhism sexuality and Gender, Albany : state University of New York Press, 1992; 3-36.

सह–शिक्षा का विकास

प्राचीन काल में सह शिक्षा का अस्तित्व तथा सह–शिक्षा की व्यवस्था की स्पष्ट जानकारी हमें नहीं प्राप्त होती है। बौद्ध ग्रंथ तो प्राय: इस संदर्भ में मौन हैं। 8वीं शती में भवभूति की रचना 'उत्तर रामचरित'[1] में सह–शिक्षा का उल्लेख है। मात्रेयी लवकुश के साथ वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करती थी। भवभूति के मालती माधव[2] से ज्ञात होता है कि कामन्दकी ने देवराट तथा भूरिवसु के साथ सह–शिक्षा पायी थी। इस प्रकार के स्पष्ट वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होते हैं, न ही चीनी यात्रियों ने इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण छोड़े हैं। बौद्ध ग्रंथों में स्त्री शिक्षा हेतु पृथक-पृथक विद्यालयों का उल्लेख नहीं मिलता है, यद्यपि इस बात के प्रमाण प्राप्त होते हैं कि तत्कालीन समय में अवगुंठन (परदा) प्रथा नहीं थी। अवगुंठन प्रथा के न होने तथा बालक एवं बालिकाओं के अलग-अलग विद्यालय के प्रमाण प्राप्त न होना परन्तु स्त्रियों का उच्च शिक्षा प्राप्त करना यह स्पष्ट करता है कि बौद्ध युग में सह–शिक्षा का प्रचलन था। ऋगवैदिक काल में वधू सभी आगतों को दिखाई जाती थी तथा यह आज्ञा दी जाती थी कि वह अपनी वृद्धावस्था तक जन सभाओं में बोल पाएगी। उस युग में स्त्रियां विदथ (सभा तथा समिति) तथा समन (उत्सव एवं मेला) में स्वच्छंदतापूर्वक सम्मिलित होती थीं। स्त्री के लिए 'सभावती' शब्द

---

1 भवभूति-उत्तर रामचरित (एम0आर0 काले का अंग्रेजी अनुवाद) अंक 2

2 भवभूति-मालती माधव (आर0जी0 भण्डारकर का अंग्रेजी अनुवाद) अंक 18

का प्रयोग हुआ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों पर परदा नहीं था। उत्तरवैदिक युग काल में भी यही स्थिति बनी रही। बौद्ध युग में रानियों के आवरण युक्त रथों में भ्रमण करने के प्रमाण मिलते हैं परन्तु ये रानियां अवगुंठनहीन रहती थीं, और बिना परदे के स्वछंदतापूर्वक मंत्रियों और अधिकारियों से वार्ता करती हैं।[1] हर्षकालीन ग्रंथ 'कादम्बरी' में बाण ने महाश्वेता, कादम्बरी और उसकी सखियों को कहीं भी परदे में नहीं दिखाया गया है। सम्राट हर्ष ने अपने ग्रंथ 'नागानन्द' में स्पष्ट लिखा है कि कन्या के लिए परदे की कोई आवश्यकता नहीं, विवाह बाद ही इसकी अपेक्षा की जाती है। बुद्ध की पत्नी गोपा जब पति के साथ जा रही होती है तो उससे कहा गया कि वह अवगुंठन डाल ले। इस पर उसने कहा कि जब उसका शरीर संयत है, इन्द्रिया सुरक्षित हैं, आचार राग रहित है और मन प्रसन्न है तब कृत्रिम आवरण से क्या लाभ?[2] फाह्यान, श्वानचांग एवं इत्सिंग जैसे चीनी लेखकों ने भी अपने वर्णन में कहीं भी अवगुंठन प्रथा का उल्लेख नहीं किया है। कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथा मंजरी में भी परदा प्रथा का उल्लेख नहीं है। कल्हण की राजतरंगिणी में भी परदे का कोई संदर्भ प्राप्त नहीं होता है। सल्तनत काल तक परदा प्रथा के प्रचलन के प्रमाण प्राय: प्राप्त नहीं होते हैं। तुर्क आक्रमणों तथा सल्तनत काल में हिन्दू परिवारों ने मुस्लिम परिवारों की भांति ही परदा प्रथा का प्रारम्भ हुआ,

---

1 जातक सं. 5 पृष्ठ 439, जातक सं0 6 पृष्ठ 31-33, जातक सं0 6 पृष्ठ 239, 300

2 ललित विस्तर

यहाँ भी स्पष्ट है जब तक परदा प्रथा प्रचलन में नहीं थी, तब तक सह-शिक्षा प्रचलन में थी और सम्भवत: इसी कारण बालक और बालिकाओं के लिए पृथक-पृथक विद्यालयों का उल्लेख हमें तत्कालीन समाज में प्राप्त नहीं होता है। सह-शिक्षा का वातावरण स्त्री-पुरूष समानता का व्यवहार प्रस्तुत करता है। वहीं दोनों को समान रूप से उन्मुक्त वातावरण प्रदान करता है। बौद्धकाल में सह-शिक्षा के प्रमाण नहीं मिलते हैं परन्तु स्त्रियों के लिए पृथक पाठशाला या विहारों के भी संकेत नहीं मिलते हैं। सम्भवत: यही सम्भावना सिद्ध करती है कि स्त्री पुरूष एक ही शिक्षा केन्द्रों में अध्ययन करते होंगे क्योंकि दर्शन, धर्म, साहित्य का उच्चस्तरीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए शास्त्रार्थ, विचार-विमर्श आदि प्रविधियों का प्रयोग करना आवश्यक है। साहित्य, दर्शन, धर्म, एवं चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरू का सानिध्य परमावश्यक है, इससे सिद्ध होता है कि विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए सह-शिक्षा की व्यवस्था रही होगी। ह्वेनसांग ने स्थिरमति तथा गुणमति के नालंदा में शिक्षा ग्रहण का उल्लेख किया है, इसके आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में सह-शिक्षा थी, परन्तु नैतिक आचरण का पतन होते जाने के साथ-साथ स्त्री का सामाजिक स्थानों पर जाना अवरूद्ध होता गया। इसका प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा। जैसा कि भगवान बुद्ध का मत था कि स्त्री का प्रवेश बौद्ध धर्म की आयु कम करेगा उसका प्रभाव जल्द ही दिखाई देने लगा। बौद्ध

भिक्षुओं का नैतिक पतन होने लगा, जनमानस में भी इसका प्रभाव पड़ा। राजतरंगिणी में कल्हण ने एक बौद्ध भिक्षु द्वारा स्त्री के अपहरण की बात कही है। तत्कालीन समाज में लगातार हो रहे नैतिक पतन ने स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया, कन्याओं के विवाह उम्र में गिरावट आई तथा स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, कन्याओं का बौद्ध मठों में प्रवेश बंद कर दिया गया। यद्यपि बौद्ध धर्म में समानता की बात कही गयी है, सम्भवतः यही कारण था कि बुद्ध ने स्त्रियों को संघ-प्रवेश की अनुमति प्रदान की। इस कारण स्त्री-शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ परन्तु यह विदित होता है कि स्त्री-शिक्षा तथा सह-शिक्षा उच्च स्तर तक ही सीमित रही, आम जनता में इसका अधिक विस्तार नहीं हुआ। प्रारम्भ से स्त्रियों के प्रति संशयात्मक विचारधारा के कारण संघो ने भी स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। स्त्री-शिक्षा मात्र उच्च वर्ग की कन्याओं तक सीमित रही। मौर्य राज दरबार में ग्रीक राजदूत मेगास्थनीज ने लिखा है ब्राह्मण लोग अपना दार्शनिक ज्ञान अपनी पत्नियों को इस डर से नहीं देते थे कि कहीं वे उन्हें छोड़कर न चली जाएं। गृह सूत्रों में यज्ञों में पति के साथ-साथ पत्नी द्वारा भी वैदिक मंत्रों के उच्चारण का भी उल्लेख है। इस प्रकार वह काफी शिक्षित होती थी और यज्ञ में भाग ले सकती थी। यह कहा गया है कि सुशिक्षिता कुमारी अपने पिता और अपने पति दोनों के परिवारों के लिए सुख और समृद्धि लाती है। उसका विवाह किसी सुशिक्षित पति से किया जाना

चाहिए। ऐसी कई प्रसिद्ध भिक्षुणियों का उल्लेख है, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण भाग लिया था। बुद्ध ने कई मेधाविनी महिलाओं को थेरी माना था, जिनमें धम्मदीना सर्वप्रमुख थी। अन्य प्रसिद्ध महिलाओं में बिम्बसार के पुराहित की पुत्री सोमा, चम्पा, किसा गौतमी थी, सुक्ता एक अच्छीवक्ता थीं कहा जाता है कि उसका भाषण सुनने के लिए लोगों की भीड़ नगर के बाहर एकत्र हो जाती थी। बौद्ध बिहारों में अध्ययन तथा संस्कृति में रूचि रखने वाली महिलाओं को ही प्रवेश मिलता था। छात्राओं को किसी श्रद्धाचारी आचार्य के सानिध्य में रखा जाता था, हालांकि किसी पुरूष गुरू के उन्हें दीक्षा देने या शिक्षा देने पर रोक नहीं लगाई गयी थी। एक तत्कालीन ग्रंथ 'महावस्तु' में महिलाओं की साहित्य प्रवीणता का उल्लेख है। एक कारीगर की पुत्री अमस में साहत्यिक प्रतिभा थी। लड़कियों को गीत ओर नृत्यकला का प्रशिक्षण दिया जाता था जैसा कि सम्राट हर्ष की बहन राज्यश्री को और विदर्भ की राजकुमारी मालविका को दिया गया था। हर्ष की 'प्रियदर्शिका' में गायन, नृत्य और वाद्यवादन को किसी कुलीन कन्या के गुणों में गिना गया है।

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सर्वोत्तम थी, समाज में उसका स्थान आदरणीय तथा पूजनीय था, परन्तु क्रमशः समय बीतने के साथ स्त्रियों की स्थिति में लगातार पतन हुआ जो कि सल्तनत काल में चरम सीमा पर था। बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति सुधार के प्रयास किये गये, स्वयं भगवान बुद्ध संघ में स्त्री-प्रवेश

से सहमत नहीं थे, परन्तु स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे, सम्भवतः इसी कारण उन्होंने संघ में स्त्री प्रवेश की अनुमति दी कि स्त्री संघ में शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर समाज में स्त्री की स्थिति में सुधार कर सकती है। बौद्ध काल में ही वेश्यावृत्ति के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इस कारण समाज में स्त्रियों का स्थान आदरणीय नहीं था, वे पूजनीया के स्थान पर भोग्या का स्थान लेती जा रही हैं। बुद्ध ने भी स्त्री को संघ प्रवेश की अनुमति देने के बाद कहा था कि अब यह धर्म चिरस्थायी नही हैं। उन्होंने उपमा दी थी कि जिस प्रकार पाला पड़ने या कीड़े लगने से अच्छी खेती शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार स्त्री प्रवेश से धर्म भी विनष्ट हो जाएगा। स्वयं बुद्ध का स्त्रियों के प्रति बहुत अधिक विश्वास नहीं था। स्त्रियों का अस्थिर विचार, नियम और व्यवस्थाओं का पूर्णतः पालन न कर सकने की क्षमता तथा चंचल मन ही उनके इस संशयात्मक व्यवहार के प्रमुख कारण थे। बौद्ध धर्म में स्त्रियां पुरूषों की भांति भिक्षुणी बन सकती थीं तथा समान शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। परन्तु वास्तविकता में बौद्ध धर्म का रसतत्व पुरूषों का स्त्रियों से विरक्त रहने का था। बौद्ध धर्म में त्याग और वैराग्य का स्थान को मुख्य स्थान दिया गया है। बुद्ध ने हमेशा यह सलाह दी कि भिक्षु स्त्रियों से बचें। बुद्ध के अनुसार स्त्रियों से दूर रहकर ही सुखद एवं कामनारहित जीवन व्यतीत किया जा सकता है। इसलिए बुद्ध अविवाहित जीवन को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। उनके विचार थे कि अविवाहित जीवन ही आदर्श जीवन है। बुद्धिमान वहीं है जो विवाह न करे। बुद्ध ने विवाहित जीवन की

तुलना आग से जलती हुयी कोयले की खान से की है। सम्भवतः उनके इन्हीं विचारों के कारण बौद्ध धर्म में सामान्य परिवार की स्त्रियों को स्थान न मिल सका, मात्र उन स्त्रियों को प्रवेश मिल सका जो कुलीन परिवारों से सम्बन्धित थी। बुद्ध ने केवल अविवाहित को महत्वपूर्ण ही नहीं बताया बल्कि श्रेष्ठतम गृहस्थ जीवन की प्रशंसा की, उन्होंने पति-पत्नी के सम्बन्ध तथा सफल वैवाहिक जीवन के लिए नियमों को बताया। गृहस्थों से उन्होंने कहा कि पत्नियों को अपने मित्र समझकर व्यवहार करें। साथ ही स्त्रियों से कहा कि वे अपने घरेलू कार्यो में बुद्धिमत्ता एवं उद्योगशीलता दिखाए। बुद्ध ने कुछ स्त्रियों यथा अम्बपाली, विशाखा, सुजाता की बहुत प्रशंसा की।

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में बुद्ध के विचार उच्च थे, वे केवल स्त्री जाति की कमजोरियों के प्रति आशंकित थे इसलिए बौद्ध धर्म में उनकी धार्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया गया। वस्तुतः बुद्ध के समय में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त निम्नतम स्तर की हो गयी थी। स्त्रियां सामाजिक दृष्टि से बहुत हीन समझी जाने लगी थीं। पूजनीया का स्थान भोग्या ने ले लिया था।बुद्ध ने स्त्री जाति को महत्ता प्रदान करते हुए कहा था-

"निर्वाण की प्राप्ति न केवल ब्राह्मण को होती है अपितु मनुष्य मात्र को प्राप्त हो सकती है और स्त्रियों को भी प्राप्त हो सकती है। बौद्ध धर्म समानता का

सिद्धान्त अपनाते हुए शूद्रों की ही भांति स्त्री को भी पुरूषों के समान स्थान प्रदान करते हुए स्त्री-शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। इस कारण बौद्ध युग में स्त्री जाति को न केवल शैक्षिक स्तर पर अपितु बौद्धिक स्तर पर उन्हें पुरूषों के बराबर स्थापित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री जाति ने खुलकर, बौद्ध धर्म का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार किया जिसके प्रमाण हमें स्पष्टतः बौद्ध ग्रन्थों तथा तत्कालीन साहित्य में प्राप्त होते हैं साथ ही स्त्रियों का उच्च्व शिक्षित होना उनकी योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है जो कि आधुनिक युग के समान बौद्ध युग में भी प्रदान की जाती थी।

स्त्री एवं सह–शिक्षा का समाज पर प्रभाव

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त रहा है। उनकी अवस्था पुरूषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्म विकास और उत्थान कर सकती थी। स्त्री पुरूष की शरीरार्द्ध और अर्द्धांगिनी मानी गयी तथा 'श्री' और 'लक्ष्मी' के रूप में वह पुरूष के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति और पुंजित करने वाली कही गयीं। स्त्रियों की दशा में युग क अनुरूप में परिवर्तन होता रहा है। उसकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्य युग तक अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप परिवर्द्धन होते रहे हैं। यह सही है कि वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी। किन्तु परवर्ती काल में उनकी स्थिति में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया, जो अवनति के रूप में बाद के समयों तक चलता रहा। पुरूषों की तुलना में स्त्रियों को समाज में श्रेयस्कर स्थान नहीं प्राप्त हुआ अपितु अपेक्षाकृत निम्न स्थान ही प्राप्त हुआ जिसके प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता ही थे। धर्मसूत्रों और स्मृतियों के युग में स्त्री की दशा पूर्णतः पतनोन्मुख हो गयी। स्त्री के साथ भोजन करने वाले पुरूषों को गर्हित आचरण करने वाला व्यक्ति घोषित किया गया तथा उस स्त्री की प्रशंसा की गई जो 'अप्रतिवादिनी' (प्रतिवाद न करने वाली) थी। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया।

उसके शरीर पर उसके पति का स्वत्व माना गया। पितृसत्तात्मक समाज में होने के कारण उसकी स्थिति निरन्तर ह्रासोन्मुख हो गयी। उसकी स्वतन्त्रता और उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाये जाने लगे। मनु जैसे स्मृतिकारों ने उसे कभी भी स्वतंत्र न रहने के लिए निर्देशित किया गया। विज्ञानेश्वर ने शंख का उद्धरण देकर टिप्पणी की है कि वह घर से बिना किसी से कहे और बिना चादर ओढ़े बाहर न जाय। शीघ्रतापूर्वक न चले। बनिये, संन्यासी, वृद्ध और वैद्य के अतिरिक्त किसी पर पुरूष से बात न करे, अपनी नाभि खुली न रखे, एड़ी तक वस्त्र पहने, अपने स्तनों पर से कपड़ा न हटाए, मुँह ढंके, पति या सम्बन्धियों से घृणा न करे। इस प्रकार अनेक नियन्त्रण उस पर लगाये गये तथा सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टियों से उसे प्रतिबन्धित कर दिया गया। दासी के रूप में उससे सभी गृहस्थ कार्य करने का निर्देश दिया गया। अतः हम पाते हैं कि बौद्ध काल तक स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त निकृष्ट हो गयी थी। स्वयं बुद्ध भी स्त्री के आचरण के प्रति आशंकित थे तथा उन्होंने संघ में स्त्री प्रवेश की अनुमति नहीं दी, परन्तु कालान्तर में उन्होंने स्त्रियों की स्थितियों के बारे में मनन किया, साथ ही संघ में स्त्री प्रवेश की अनुमति दी। उन्होंने घोषणा की स्त्री प्रवेश से बौ धर्म चिरस्थायी नहीं रक पाएगा परन्तु उन्होंने स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा प्रदान करने हेतु संघ में नियमों की रचना की परिणामतः उच्चकुल की स्त्रियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर उच्च शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की, सामान्य वर्ग की स्त्रियों ने सम्भवतः नियमों की कठोरता के
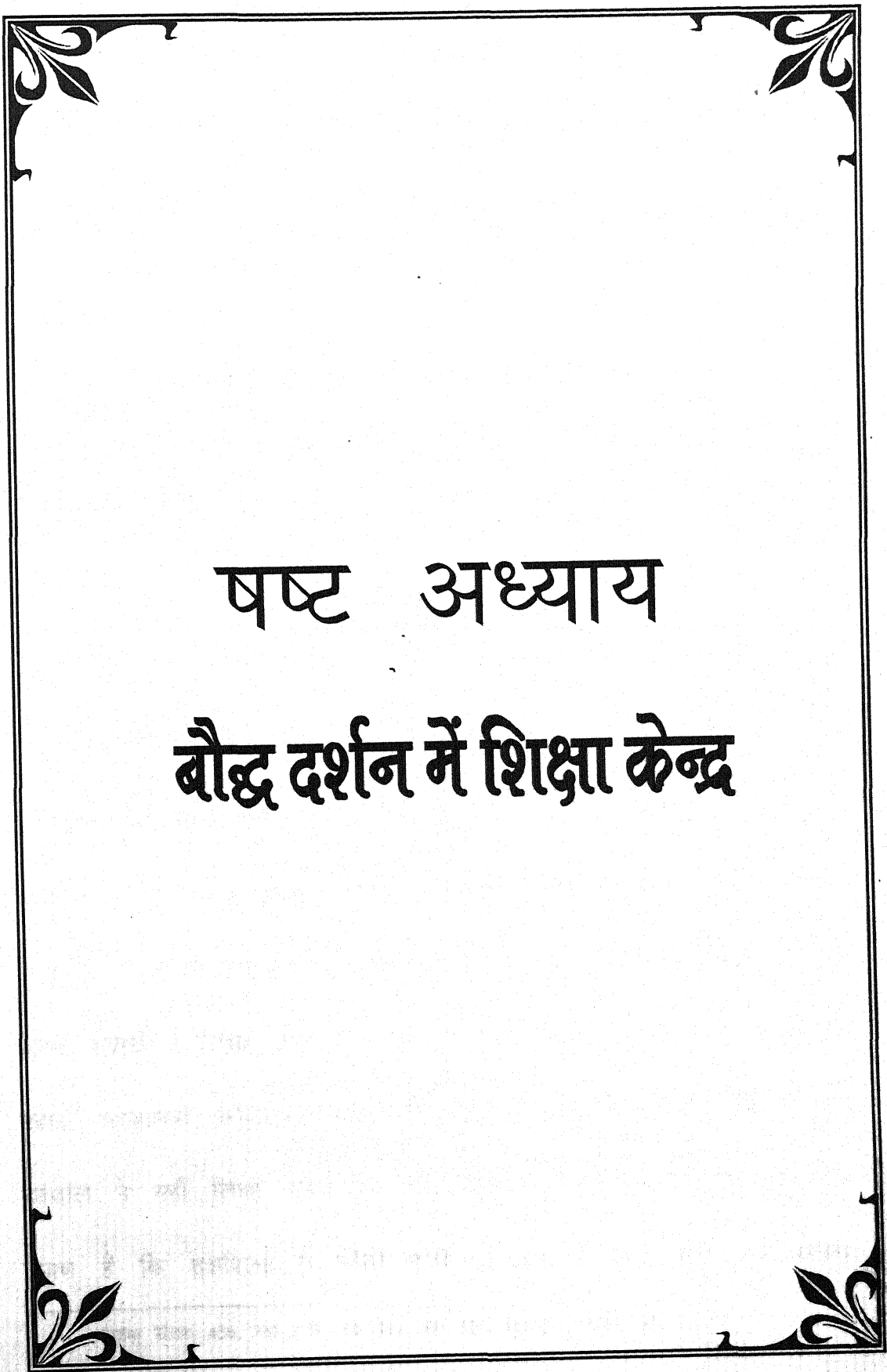
कारण संघ प्रवेश में अधिक रूचि नहीं ली परन्तु फिर भी कहा जा सकता है कि बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ। स्त्रियों ने पुरूषों के समकक्ष शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में बालक बालिकाओं के लिए पृथक-पृथक विद्यालयों के कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं, न ही तत्कालीन किसी इतिहासकार ने इसका वर्णन किया है अतएव स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में सह शिक्षा की व्यवस्था थी। बौद्ध धर्म में छात्र तथा छात्राओं को शिक्षा प्रदान करने में समानता का व्यवहार किया जाता था। उपासिका बनने के लिए किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था। संघ में रहते हुए उपासिका संघ के नियमों और आचारों का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करती थी। छात्रों की भाँति छात्राएं भी ब्रह्मचर्य व्रत और अध्यात्ममार्ग का अनुपालन करती हुयी भिक्षाटन तथा उपदेश देती थी। संघमित्रा लंका जाकर बौद्ध शिक्षा के प्रचार में संलग्न हुई। सुभा, अनोपमा आदि स्त्रियां दर्शन में पारंगत थी। 'थेरीगाथा' में लगभग 50 भिक्षुणियों की कविताएं संकलित हैं, जो उनकी प्रतिभा और ज्ञान को व्यक्त करती हैं। जातक कथाओं में 'अमरा' नामक एक स्त्री को वार्तालाप और व्यापार सबन्धी कार्यों में अत्यधिक कुशल बताया गया है। वह पत्ती पर लिखने में दक्ष थी। एक अन्य जातक में 'उदम्बरा' नामक रानी का उल्लेख है जो पढ़ने लिखने में पारंगत थी। बौद्धकाल में स्त्री शिक्षा मे सुधार हुआ, सह-शिक्षा ने स्त्री जाति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। बौद्ध युग में अनेक सुशिक्षित, कलामर्मज्ञ स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं, जिसका कारण बौद्ध धर्म स्त्रियों के

साथ समानता का व्यवहार कर उनकी प्रतिभा को निखारना था। यह स्पष्ट है कि संघ प्रवेश ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार किया, स्त्रियों में शिक्षा-दीक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। समाज में कुछ परिब्राजकाएं ऐसी भी थीं जो कि बौद्धिक जीवन व्यतीत करती थीं ओर उच्च्व स्तर का दर्शन का ज्ञान प्राप्त करती थी। यह परिब्राजकाएं उच्चकुलीन तथा सुशिक्षित होती थीं और अपने अध्यात्मिक विकास के लिए सांसारिक सुखों का परित्याग करती थी। विशाखा की विद्वता का प्रभाव ही था जिसने उसे बौद्ध संघ की संरक्षिका नियुक्त करवाया था। बौद्धकाल में स्त्री शिक्षा की उल्लेखनीय उन्नति हुयी, सह-शिक्षा ने इनकी स्थिति में चार-चाँद लगा दिये। बौद्ध भिक्षुणियों ने एक ओर जहाँ बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में दर्शन एवं धर्मशास्त्र की उच्च्व शिक्षा प्राप्त की वहीं दूसरी ओर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु देशाटन किए, कुछ भिक्षुणियां तो विदेश भ्रमण पर गई तथा वहाँ मठ स्थापित किये। तिब्बत में ल्हासा में दो राजकुमारियों द्वारा मठा स्थापित किए गए। गणिकाओं की स्थितियों में बौद्धकाल में सम्माननीय स्थान प्राप्त हुआ। अम्बपाली नामक प्रसिद्ध गणिका उल्लेखनीय है जिसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर भिक्षुणी का जीवन व्यतीत किया। राजकुमारियाँ, कुलीन वर्ग की स्त्रियों ने विलासितापूर्वक जीवन परित्याग कर बौद्ध धर्म स्वीकार कर कठोर नियमों को अंगीकृत किया, जिसने सामान्य तथा निम्नवर्ग की स्त्रियों पर प्रभाव डाला, जिससे उनकी भी स्थिति में सुधार हुआ। कुछ भिक्षुणियों ने तो इतनी धर्मममर्ज्ञता तथा आध्यात्मिक रूप से उन्नति प्राप्त कर ली थी कि वे धार्मिक विद्वानों

से शास्त्रार्थ करती थीं। तथा प्रवचन करती थी। उल्लेखनीय है कि बौद्ध भिक्षुणियां नगरों में समूह तथा सभाओं में उपदेश वाचन करने लगी थीं। अतएव स्पष्ट है कि वैदिक काल के उपरान्त जबकि सूत्रकाल में स्त्रियों की स्थिति पतन की ओर अग्रसर थी, बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा एवं सह शिक्षा ने समाज में स्त्रियों की स्थिति को उन्नत किया, समाज में उनकी स्थिति भोग्या से परिवर्तित की तथा सम्माननीया के रूप में प्रतिष्ठित किया, स्त्रियों की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया, सामाजिक रूप से उनकी स्थिति में सुधार किया, जिसके परिणामस्वरूप समाज उन्नति की ओर अग्रसर हुआ । तत्कालीन समाज जो कि अन्ध विश्वासों, कुरीतियों में जकड़ा था, बौद्धकाल में समानता के व्यवहार ने समाज की धार्मिक, आध्यात्मिक उन्नति को दिशा प्रदान की तथा समाज में एक आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावना की लहर बहने लगी जिसने समाज में भेदभाव मिटाने व समानता स्थापित करने का कार्य किया।

****

षष्ट अध्याय

बौद्ध दर्शन में शिक्षा केन्द्र

तक्षशिला

प्राचीन काल से तक्षशिला (अब पाकिस्तान के अधिकार क्षेत्र में है) ज्ञान और विद्या के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रसिद्ध था। इसकी प्रसिद्धि सातवीं सदी ई0पू0 में ही हो गयी थी। यह उल्लिखित है कि इसकी स्थापना भरत ने की थी और इसका प्रशासन तक्ष को सौंपा था। अतः तक्ष के नाम पर इस स्थान का नाम तक्षशिला हुआ। जातकों से ज्ञात होता है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र वहां जाकर आचार्य के सानिध्य में रहकर शिल्प का ज्ञान प्राप्त करते थे।[1] वहाँ वेदों के साथ-साथ हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं 18 शिल्पों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी। देश के कोने-कोने से विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इनमें वाराणसी, राजगृह, मिथिला, उज्जियनी आदि नगरों के भी छात्र रहते थे जो कि यहां ज्ञानार्जन हेतु आते थे। पाटलिपुत्र निवासी 'जीवन' ने तक्षशिला में जाकर अध्ययन किया था जो कि कालान्तर में आयुर्वेद का महान विद्वान बना। वह महात्मा बुद्ध का समकालीन था। यहाँ से अनेक सम्राटों ने शिक्षा प्राप्त की। कौशल नरेश प्रसेनजीत, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, महान अर्थशास्त्री कौटिल्य ख्यातिलब्ध वैद्य जीवक, वैयाकरण पाणिनी और पतंजलि ने यहाँ शिक्षा ग्रहण की थी। इसके वर्तमान अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि तक्षशिला ने चौथी शती ई0 पू0 से छठी शती तक अनेक

---

1 जातक संख्या 456, सं0 378, सं0 489, सं0 336, तिलमुत्ति जातक सं0 252

उथल-पुथल देखे थे। यवन, यवन-बाख्वी, शक, पल्लव, कुषाण और हूणों के अनेक आक्रमण इसने सहे थे तथा इन झंझावतों से अपने को यथारक्षित रखने का प्रयास किया था। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि नवीन ज्ञान-विज्ञान का सम्पर्क भरत से हुआ तथा भारतीय जनमानस में उसका समावेश भी प्रारम्भ हुआ। जातक युग में यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या बहुत अधिक थी, जो वेद और शिल्प में पारंगत थे। वे एकांतवास करते थे तथा उनके साथ उनके शिष्य रहते थे। जातकों से विदित होता है कि यहाँ के एक आचार्य के निर्देशन में पाँच-पाँच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐसे आचार्य अनेक थे जो सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। निश्चित ही यहाँ की शिक्षा बहुत अधिक संघटित नहीं थी, किन्तु फिर भी इसका महत्व था। निर्धारित पाठ्यक्रम होता है, छात्र अपनी इच्छानुसार विषय पढ़ते थे। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था, स्वांत सुख, न कि उपाधि प्राप्ति। एक जातक में उल्लिखित है कि एक आचार्य से 103 विद्यार्थी धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा देने में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे[1] आचार्य के पास क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य के साथ-साथ दर्जी और मछली मारने वाले निम्न जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे, जो उस युग की

---

1 जातक संख्या 522,

जाति–व्यवस्था के लचीलेपन की ओर भी इंगित करता था। धनी और निर्धन समान रूप से गुरू के शिष्य हो सकते थे। तत्कालीन युग में धनी छात्र धनराशि के साथ गुरू दक्षिणा देता था और निर्धन छात्र श्रम करके गुरू दक्षिणा प्रदान करता था। धनी छात्रों द्वारा प्रायः एक एक सहस्र कार्षा का गुरू को दक्षिणा के रूप में अर्पित किया जाता था। योग्य एवं मेधावी छात्रों को राजकीय सहायता पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। वाराणसी और राजगृह के राजपुरोहित के पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता था। स्पष्ट है कि इस युग में तक्षशिला अशोक के समय में शिक्षा का मुख्य केन्द्र था।[1] प्रतिभाशाली किन्तु निर्धन छात्रों को राज्यों और समाज की ओर से प्रत्येक सम्भव सहयोग प्राप्त होता था। तक्षशिला के शिक्षा केन्द्र का महत्व चौथी सदी ई0 तक ही रहा, क्योंकि पाँचवी सदी में भारत की यात्रा करने वाले फाह्यान ने इस स्थान से सम्बन्धित ऐसा कोई विवरण नहीं दिया जिससे यह जाना जा सके कि तक्षशिला उस समय शिक्षा और विद्या का प्रधान केन्द्र था। ह्वेनसांग जब भारत आया था, उस समय इसका सम्पूर्ण वैभव नष्ट हो चुका था।[2] अन्य बौद्ध विहारों की अवस्था जीर्ण शीर्ण थी।

---

1 एम0 के0 दास-एजूकेशन सिस्टम आफ दि ऐशेन्ट हिन्दूज पृष्ठ 17

2 वाटर्स- आन ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लंदन, भाग-2, पृष्ठ 240-45

नालन्दा

प्राचीन काल में उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। वहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन की शिक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों ने विशेष रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। वैसे नालन्दा की ख्याति महात्मा बुद्ध के समय से थी। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर 10 करोड़ मुद्राओं से नालन्दा क्षेत्र को क्रय करके महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने वहाँ के आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालान्तर में अशोक महान ने वहाँ विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है कि यह स्थान अपने प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र होते हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी था। इसकी प्रमुखता पांचवी शती के मध्य में अधिक बढ़ी जब बौद्ध विद्वान दिङ्नाग ने नालन्दा में जाकर वहाँ के विख्यात ब्राह्मण पंडित सुदुर्गम को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय-समय पर गुप्त राजाओं ने नालन्दा के विकास में सराहनीय योगदान किया था, जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की व्यापकता का उज्जवल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त,

तथागत गुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योग दिया था। श्वानचांग के विवरण से ज्ञात होता है कि अनेकानेक बौद्ध विहारों का निर्माण यहाँ किया गया था। विहारों में कुछ तो काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी अत्यन्त आकर्षक थे। यहाँ का ससे बड़ा विहार 203 फीट लम्बा और 164 फीट चौड़ा था। इसके कक्ष 9 फीट से 12 फीट तक लम्बे थे। यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के विहारों की शिखर श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल तैरते रहते थे। यहाँ कई विशालकाय भवन थे, जिसमें छोटे-बड़े अनेक कक्ष थे। उत्खनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते हैं। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे-बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोनों पर कूपों का निर्माण किया गया था। इस विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहाँ के भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पालन पोषण होता था। यही नहीं, इन गाँवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहाँ भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे।

ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से वाद-विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8-10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे और एक दो सफल। अपने-अपने विषय के यहाँ अनेक विद्वान थे। इत्सिंग के समय में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या 3000 थी किन्तु श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय में छात्र संख्या बढ़कर 10,000 हो गई। यहाँ के शिक्षकों की संख्या1510 थी जिनमें एक हजार दस सूत्र निकायों में दक्ष थे और शेष पाँच सौ अन्य विषयों में। श्वान च्वांग के समय इस विश्वविद्यालय का प्रधान कुलपति शीलभद्र था, जो अनेकानेक विषयों में पारंगत था। उसके पहले धर्मपाल इस विश्वविद्यालय का कुलपति था। श्वानचांग भी यहाँ के प्रधान शिक्षकों में से था जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था। यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदूर प्रदेशों और विदेशों में विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहाँ रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे तथा अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहाँ धर्मयक्ष नाम विशालकाय पुस्तकालय था। ईत्सिंग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार की थी, जिनमें लगभग 3 लाख श्लोक थे। रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नामक तीन

भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था, जिनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्रायः भीड़ रहा करती थी। यहाँ का एक अध्यापक 9 या 10 विद्यार्थी को पढ़ाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक कक्ष बहुधा बड़े-बड़े थे। इनमें 8 विशाल व्याख्यान भवन थे और 300 छोटे व्याख्यान कक्ष। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यानों की आयोजना की जाती थी। नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया-कराया जाता था। यहाँ के अनेक विहार भी महायानी शाखा के थे। पालि भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन, वसुबन्धु, असंग, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे, जिन्होंने इसी शिक्षा केन्द्र से अपने को उन्नत किया था। श्वान-चांग ने अनेक ऐसे विद्वान आचार्यों का उल्लेख किया है, जो अपने अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ अध्ययन-अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभागिम, जिनमित्र, आर्यदेव, दिङ्नाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान विद्वान थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे, नालन्दा का पाठ्यक्रम विस्तृत था। मुख्य रूप से यह विहार महायान शाखा का था, किन्तु हीनयान शाखा के ग्रंथों तथा अन्य विषयों का भी अध्यापन होता था। ह्वेनसांग ने योगशास्त्र का अध्ययन करने के लिए नालंदा में प्रवेश किया था। यहाँ

वाद-विवाद ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन था। प्रारम्भ में विद्यार्थियों को व्याकरण के नियमों को कंठस्थ कराया जाता था, फिर भाषा का पूर्णज्ञान कराने के बाद तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के अध्ययन के बाद विद्यार्थियों को वाद-विवाद में अग्रसर होने का अवसर दिया जाता था। नालंदा में तीन वेदों, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं वेदान्त तथा सांख्य दर्शन का भी अध्यापन होता था। चिकित्साशास्त्र भी अध्ययन का एक विषय था। शीलभद्र की अध्यक्षता में ह्वेनसांग ने जिन विषयों का अध्ययन किया था उनमें से प्रमुख थे-योगशास्त्र, हेतु विद्या, शब्द विद्या आदि। यहाँ पालि का अध्ययन अनिवार्य था, क्योंकि हीनयान ग्रन्थ पालिभाषा में ही है। अतः हम देखते हैं कि नालंदा के पाठ्यक्रम में अनेक विषय सम्मिलित थे तथा सभी विषयों की उच्च्व शिक्षा दी जाती थी एवं विद्यार्थी समान रूप से अपना ज्ञानवर्द्धन करते थे।

नालन्दा का सम्बन्ध प्राचीन काल से जैन एवं बौद्ध धर्म से था। दीघनिकाय के ब्रह्म जाल सुक्त में महात्मा बुद्ध के नालन्दा में प्रवास का वर्णन है। जैन भगवती सूत्र में वर्णित है कि महावीर स्वामी ने नालन्दा में गोसाल से भेंट की और चौदह वर्षावास निवास किया। अशोक के काल में भी नालन्दा बिहार उन्नत हो चुका था। ह्वेनसांग के अनुसार शकादित्य या कुमारगुप्त प्रथम दान से देकर नालन्दा विश्वविद्यालय की नींव रखी। जिसके उत्थान में बुधगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य ने भी योगदान दिया। बालादित्य ने नालन्दा में तीन

मंजिला मण्डप निर्मित करवाया। जिसमें कई विहार भी थे। पाल अभिलेखों में इसे महाविहार अर्थात् 'नालन्दा महाविहाराय आर्य भिक्षुस्य' कहा गया है। हर्ष के काल में नालन्दा का महत्व बढ़ गया था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष द्वारा नालन्दा में शैक्षणिक व अन्य व्यय के लिए सौ ग्रामों का राजस्व दिया गया और पीतल का विहार बनवाया गया। पाल शासकों के काल मेकं नालन्दा में बौद्ध तंत्रवाद का विकास हुआ। देवपाल के शासन काल में नालन्दा को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान मिली। देवपाल (810 से 850 ई0) के मुद्दगिरि ताम्रपत्र में वर्णित है कि सुमात्रा के महाराज बेलपुत्र देव के आग्रह करने पर इनके द्वारा निर्मिए करवाए गए बिहार की व्यवस्था के लिए देवपाल ने पांच गांव दान में दिया। विश्वविद्यालय का नेतृत्व विशेषज्ञ कुलपति को दिया जाता था। इसका चुनाव चरित्र, विद्वता व कार्य अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाता था। कुलपति की सहायता के लिए शिक्षा समिति व प्रबन्ध समिति गठित की गयी थी। शिक्षा समिति का कार्य छात्रों के प्रवेश, पाठ्यक्रम का निर्धारण और अध्यापकों के पाठ्य विषय का विभाजन, सम्बन्धित कार्य करना था। प्रबन्ध समिति के द्वारा सामान्य प्रशासन, भवन-निर्माण, आवास, भोजन, चिकित्सा एवं आय-व्यय से सम्बन्धित कार्य किए जाते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा अत्यन्त कठिन थी। इनमें व्याकरण, अभिधम्म कोश व न्याय से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते थे। ह्वेनसांग के अनुसार केवल बीस प्रतिशत छात्र

ही प्रवेश परीक्षा में सफल हो पाते थे। विश्वविद्यालय में न्यूनतम बीस वर्ष की आयु के विद्यार्थी ही सम्मिलित किए जाते थे। प्राथमिक शिक्षा के लिए भी प्रबन्ध किया गया था। जिसमें ब्रह्मचारी ही प्रविष्ट किए जाते थे। नालन्दा में एक विशाल पुस्तकालय निर्मित किया गया था। ह्वेनसांग के अनुसार दीवारों से ही बनायी गयी पत्थर की आलमारियों पर पुस्तकों को रखा जाता था। सम्बन्धित विषय के विद्वान अध्यापक को पुस्तकालय के देख-रेख की जिम्मेदारी दी जाती थी। पुस्तकालय में पुस्तकों को संरक्षण के साथ-साथ लेखन भी किया जाता था। इत्सिंग ने नालन्दा से चार सौ संस्कृत ग्रंथों की प्रतियां ली थीं। पुस्तकालय के तीन भवनों का उल्लेख प्राप्त होता है- रत्नादधि, रत्नसागर तथा रत्नरंजक। ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा में 5 विद्याएं पढ़ायी जाती थी- शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या, शिल्प स्थान विद्या और अध्यात्म विद्या। प्रत्येक विषय में सौ व्याख्यान होते थे। इसके अतिरिक्त वाद-विवाद के द्वारा भी ज्ञान का प्रतिस्पर्धी विकास किया जाता था। नालन्दा से शिक्षा ग्रहण करने वाले देश-विदेश के विद्यार्थियों की लम्बी सूची है। नालन्दा विश्वविद्यालय में विभिन्न ग्रंथों का अनुवाद भी किया जाता था। इससे सांस्कृतिक समन्वय व ज्ञानार्जन में सहायता मिली। शीलभद्र ने "आर्य बुद्ध भूमि बुद्ध व्याख्यान' ग्रन्थ की रचना की। धर्मपाल ने 'वर्ण सूत्र वृत्तिनाम' नामक संस्कृत व्याकरण की टीका लिखी। इसके अतिरिक्त शांतरक्षित ने तत्व संग्रह, पद्मसंभव ने समय

'पज्यशिका' ग्रंथों की रचना की। यहां पर रहने वाले शिक्षक, विद्वता उच्च चरित्र के लिए प्रसिद्ध थे। ह्वेनसांग के अनुसार इन्हें समाज में अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था।[1]

कालान्तर में नालंदा की अवनति होने लगी, सम्भवत: विहारों का निर्माण न हो सकना ही अवनति का प्रमुख कारण था। बख्तियार खिलजी ने नालंदा के भवनों को ध्वस्त कर दिया। वर्तमान में नालंदा के अवशेष ही अपने यश-कीर्ति का बखान करते हैं।

---

1. नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत प्रशासन, समाज एवं संस्कृति ।

विक्रमशिला

इस विश्वविद्यालय की स्थापना आठवी सदी में बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने बिहार प्रदेश में स्थित भागलपुर से 25 मील दूर की थी। पूर्व मध्ययुग के शिक्षाकेन्द्रों में इस विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ ख्याति थी। अनेक बौद्ध मंदिरों और विहारों का निर्माण यहाँ कराया गया था। उन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्शन और धर्म की चर्चाएं आयोजित की जाती थी। यहां के अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की, जिनका बौद्ध साहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध है रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, खेतारि, रत्नाकर शान्ति, ज्ञानश्री मिश्र, रत्नवज्र, दीपशंकर और अभयशंकर। दीपंकर नाम विद्वान भिक्षु ने सैकड़ों ग्रन्थों (सम्भवतः 200 ग्रन्थों) की रचना की थी। वह इन शिक्षा-केन्द्र के महान प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेला था, जो गौड़ (बंगाल) प्रदेश का रहने वाला था। वह बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ तिब्बत भी गया था। यहां बौद्ध धर्म और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी, विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तकें भी उपलब्ध कराई जाती थी तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान आचार्य द्वारा किया जाता था। देश के ही नहीं बल्कि विदेशों से भी छात्र यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। विदेशी छात्रों में

तिब्बत के अधिक छात्र होते थे, जो बौद्ध धर्म तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहाँ रहते थे। प्रायः एक छात्रावास तिब्बत के ही छात्रों से भरा रहता था। शिक्षा समाप्ति के बाद विद्यार्थी को उपाधि प्राप्त होती थी जो कि उसकी दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी। दसवीं सदी में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या काफी थी जो नालन्दा विश्वविद्यालय से किसी भी प्रकार कम नहीं थी। वस्तुतः मध्ययुगीन भारत में इसे छोड़कर और कोई शिक्षा का केन्द्र इतना महत्वपूर्ण नहीं था, कि सुदूर प्रदेशों के छात्र वहाँ आएं। इसलिए यहाँ छात्रों की अधिक संख्या होना स्वाभाविक था। यहाँ के अध्यापकों की संख्या भी अधिक थी जो यहाँ के विहारों तथा आवासों में रहते थे। गौड़ सम्राट धर्मपाल द्वारा निर्मित यहाँ का विहार अत्यन्त विशाल और प्रशस्त था, जिसके चारों ओर सुदृढ़ परिखा थी। इनमें बड़े और छोटे अनेक बौद्ध मन्दिर थे। धर्मपाल ने यहाँ 108 आचार्यो को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त किया था। यहाँ के प्रबन्ध के लिए अनेक पदाधिकारी और कार्यकर्ता रखे गये थे। इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय बड़े-बड़े लोगों के दान और भेंट पर आधृत था। आवास और भोजन का प्रबन्ध विश्वविद्यालय की ओर से किया जाता था। भिक्षु अध्यापक प्रबन्ध में हाथ बटाते थे। छह द्वार-पण्डितों की समिति द्वारा इसका संचालन होता था। जिसका प्रधान महास्थविर होता था। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसके प्रथम द्वार पर कश्मीर निवासी रत्नवज्र, द्वितीय द्वार पर

गौड़ प्रदेश के रहने वाली ज्ञानश्री मिश्र, तृतीय द्वार पर रत्नाकर शान्ति, चतुर्थ द्वार पर वागीश्वर कीर्ति, पंचम द्वार पर नरोप तथा षष्ठ द्वार पर प्रभाकरमति बैठते थे।

विक्रमशिला से सम्बन्धित छः महाविद्यालय भी बनाए गए थे। यहां विशिष्ट विषयों की शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशिला आवासीय विश्वविद्यालय था, इसे रक्षा प्राचीरों से सुरक्षित किया गया था। यह बज्रयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य व तंत्रवाद के अध्ययन का सबसे बड़ा केन्द्र था। सामान्य पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त विक्रमशिला में न्याय, मीमांसा, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थशास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशिला के विद्वानों की जीवनी तिब्बत में संरक्षित है। यहां के अनेक विद्वानों ने तिब्बत में शिक्षा व धर्म का विस्तार किया। जिनमें प्रमुख हैं - वैरोचन, ज्ञानपाद, प्रज्ञाकर मती, रत्नाकर, वागीश्वर व दीपांकर। पूर्व मध्यकाल में जगद्दल विश्वविद्यालय भी शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था। इसकी स्थापना पाल शासक रामपाल ने गंगा नदी के तट पर रामवती नगर में की थी।[1]

पूर्व मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमण के कारण अनेक भारतीय शिक्षा मंदिरो का विनाश हुआ, उनमें विक्रमशिला भी था, जिसे 1203 ई0 में बख्तियार

---

1. नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत, प्रशासन, समाज एवं संस्कृति ।

खिलजी ने तोड़कर और जलाकर नष्ट कर दिया था, उसने इसे दुर्ग समझ रखा था और इसी कारण उसने इसे तोड़ा भी था। तबकात-ए-नासिरी मे इसका विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार यहाँ के निवासी अधिकांश ब्राह्मण या बौद्ध भिक्षु थे। सभी सिर मुड़ाए हुए थे। इस सबको मौत के घाट उतार दिया गया। हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सैकड़ों पुस्तकें थीं, जिन्हें समझाने के लिए मुसलमान शासकों ने बचे हुए अन्य पण्डितों को बुलाया, किन्तु कोई भी पण्डित अर्थ को ठीक से समझा न सका क्योंकि सभी विद्वान मारे जा चुके थे।

अन्य शिक्षा केन्द्र

उक्त विश्वविद्यालय शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त भारत देश में अनेक बौद्ध शिक्षा केन्द्र थे, जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। बहुत से विहार या मठ छोटी-बड़ी पाठशालाओं के रूप में विकसत हो गये थे। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

वल्लभी विश्वविद्यालय

गुजरात काठियावाड़ के समुद्र के निकट स्थित वल्लभी एक ध्वस्त अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह ही नहीं था बल्कि शिक्षा का भी प्रधान केन्द्र था जो नालन्दा विश्वविद्यालय के साथ-साथ विकसित हुआ था।सातवीं सदी तक इसकी ख्याति देश के विभिन्न भागों में हो गयी थी। इस शिक्षा केन्द्र में सर्वप्रथम विहार का निर्माण राजकुमारी टड्डा ने कराया था।[1] तदनन्तर दूसरा विहार राजा धरसेन ने 580 ई0 में बनवाया था जिसका नाम श्री वप्पपाद था।[2] इस विहार का निर्देशन और प्रशासन स्थिरमति करते थे। इत्सिंग के अनुसार वल्लभी का महत्व नालन्दा की तरह था। यहाँ अनेक विशाल बौद्ध विहार मठ थे। 100 विहारों और 6000 भिक्षुओं का विवरण श्वान चांग ने भी दिया है।[3] बौद्ध

---

1 इण्डियन एक्टिविटी- भाग-4, पृष्ठ 174

2 इण्डियन एक्टिविटी- भाग-6, पृष्ठ 9

3 वाटर्स- पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 2 पृष्ठ 266

शिक्षा का प्रधान केन्द्र होने के कारण दूर-दूर के स्थानों से विद्यार्थी यहां शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। स्थिरमति और गणमति नामक विद्वान इसी विश्वविद्यालय की शोभा थे। तर्क, व्याकरण, व्यवहार, साहित्य आदि विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। वल्लभी में 100 करोड़पति रहते थे, जिनका आर्थिक सहयोग इसे प्राप्त था। अनेक राजाओं ने भी इसे दान और भेंट स्वरूप समुचित धन प्रदान किया था। ग्रंथों के लिए भी यहां दान प्राप्त होते रहते थे। 12वीं शती के पश्चात जब मुसलमानों का आक्रमण तीव्रता से होने लगा तब इस शिक्षा केन्द्र पर भी उसका प्रभाव पड़ा और इसका महत्व घटने लगा।

श्रावस्ती–

बुद्ध के जीवन काल में ही श्रावस्ती नगर बौद्ध धर्म और शिक्षा का केन्द्र बन चुका था। प्रमुख श्रेष्ठि अनाथपिंडक ने बुद्ध के समय में नगर के निकट जेतवन विहार का निर्माण करवाया था जहां बौद्ध ज्ञान और आचार की शिक्षा दी जाती थी। कुछ ही वर्षों में उस विहार में आग लग जाने के कारण उसका विनाश हो गया था। बुद्ध के काल में ही उसका पुनः निर्माण हुआ। 130 एकड़ में फैला हुआ जेतवन विहार काफी प्रशस्त और विस्तृत था। उनमें 120 भवन और कक्ष थे। भिक्षु छात्रों और आचार्यों के रहने के लिए सुन्दर

आवास थे। स्नानागार, औषधालय, पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष और व्याख्यान कक्ष उसमें बने हुए थे। पानी के लिए जलाशय का निर्माण कराया था, छाया के लिए वृक्ष लगाए गए थे तथा बैठने के लिए उपवन बनाए गए थे। श्वानच्वांग का कथन था कि महात्मा बुद्ध ने वहाँ बाड़े लगाकर पशुओं का आना अवरूद्ध कर दिया था और जल के लिए विस्तृत नहर निर्मित करायी थी। अशोक और सम्राट हर्ष के समय में श्रावस्ती विहार बौद्ध ज्ञान और दर्शन का प्रमुख केन्द्र था जहाँ दूर-दुर से भिक्षु आकर ज्ञान प्राप्त करते थे।

ओदन्तपुरी-

8वीं सदी में पाल वंश के प्रथम राजा गोपाल द्वारा पाटलिपुत्र के निकट ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी।यह विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म की तांत्रिक शाखा के लिए महत्वपूर्ण था यहाँ विशेषतया तंत्र विद्या प्रदान की जाती थी। विक्रमशिला का रत्नाकर रक्षित यहाँ सर्वास्तिवादी शाखा का छात्र था। ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का गढ़ था। यहाँ के सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु प्रभाकर ने 'सामुद्रिक व्यंजन वर्णन' का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था।[1] सल्तनत काल में मुस्लिम शासकों के लगातार आक्रमणों ने इस शिक्षा केन्द्र को नष्ट कर दिया।

---

1 पी0एन0बोस- इण्डियन टीचर्स आफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज पृष्ठ 47, 60

काशी–

विद्या और शिक्षा के क्षेत्र में भी काशी का महत्व वैदिक कालीन है। काशी हिन्दू, जैन तथा बौद्ध धर्म के प्रतिष्ठित शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। बुद्ध के युग में काशी की महत्ता पूर्ववत थी। वैदिक दर्शन, ज्ञान, तर्क और शिक्षा में काशी अग्रणी थी, इसीलिए भगवान बुद्ध ने अपना 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' काशी में ही किया तथा सर्वप्रथम अपने ज्ञान का प्रसार यहीं से प्रारम्भ किया था, ताकि उनका प्रभाव काशी के विद्वानों पर पड़ सके। जातकों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ के विद्यालयों के प्रवेश के लिए छात्रों की आयु कम से कम 16 वर्ष होनी चाहिए थी। अशोक ने यहाँ अनेक बौद्ध विहारों और मठों का निर्माण किया था। सातवीं सदी में श्वान चांग ने यहां के विहारों, चैत्यों तथा स्तूपों और भवनों को देखा था। उसके अनुसार यहाँ अनेक मंजिलों वाले भवन थे, जो अत्यन्त आकर्षक और लुभावने थे। स्पष्ट है कि काशी, वैदिक, जैन और बौद्ध तीन शिक्षाओं की केन्द्रस्थली थी।

कश्मीर–

प्राचीन काल से कश्मीर धर्म और शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। वह शैव धर्म का प्रधान केन्द्र तो था ही, साथ ही वह बौद्ध धर्म और शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। सम्राट कनिष्क ने पहली सदी ई0 में चौथी बौद्ध-संगीति का आयोजन

कश्मीर में ही किया था। यहाँ दर्शन, साहित्य, न्याय, ज्योतिष, इतिहास आदि के प्रतिभासम्पन्न विद्वान हुए थे। ह्वेनसांग के समय बौद्ध धर्म कश्मीर में विकसित अवस्था में था। यहाँ पर लगभग पाँच सौ मठों का निर्माण हुआ था। राजतरंगिणी में भी मठों की संख्या दी गई है। इन मठों में शिक्षा दी जाती थी। कश्मीर के राजा अपने नाम पर ही इन मठों का निर्माण करते थे। राजा सुरेन्द्र, राजा जनक, राजा जालौक, ने अनेक मठों का निर्माण करवायाथा। मठों का निर्माण राज-रानियों द्वारा अपने नाम पर अनेक मठ एवं विहारों का निर्माण करवाया। राजा जयसिंह की रानी रत्नादेवी ने एक विहार बनवाया जो सभी विहारों में श्रेष्ठ माना जाता था। कश्मीर के इन शिक्षा केन्द्रों में अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त कोश, न्याय, हेतु आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

पुस्करावती-

ह्वेनसांग ने यहाँ अनेक बौद्ध भिक्षु देखे थे। वसुमित्र ने इसी स्थान पर 'प्रकरण पाद शास्त्र' की रचना की थी।[1]

तमसावन-

तमसावन बौद्ध धर्म की सर्वास्तिवाद शाखा के प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात थे। इस शाखा के लगभग तीन सौ भिक्षु यहां रहते थे तथा सम्राट

---

1 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1 पृष्ठ 214

अशोक की सभा में धार्मिक शास्त्रार्थ करते थे।[1]

कान्यकुब्ज:

ह्वेनसांग ने कान्यकुब्ज में लगभग एक सौ मठों का उल्लेख किया है, जिनमें लगभग दस हजार भिक्षु निवास करते थे। यहां बौद्ध धर्म तथा दर्शन की उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान की जाती थी। ह्वेनसांग ने यहां लगभग तीन माह निवास कर आचार्य वीरसेन से त्रिपिटक का ज्ञान प्राप्त किया था।[2]

लम्पा–

लम्पा महायान शाखा का प्रमुख केन्द्र था।[3] इस मठ के एक ब्राह्मण स्नातक ने चीन यात्रा की थी जहाँ उसने संस्कृत चीनी भाषा में अनेक ग्रंथों के अनुवाद में योगदान किया था। ह्वेनसांग ने यहां दस से अधिक बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है।

गज–

गज में बौद्ध धर्म की सर्वास्तिवाद शाखा के लगभग 300 भिक्षु शिक्षा प्राप्त करते थे।[4] ह्वेनसांग ने यहां 'लगभग दस मठों का वर्णन किया है।

---

1 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1 पृष्ठ 294
2 वाटर्स, पूर्वोक्त ग्रंथ भाग 1 पृष्ठ 297
3 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 181
4 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 114

चीन मुक्ति–

चीनमुक्ति में ह्वेनसांग ने दस मठों का उल्लेख किया है, यहां के प्रसिद्ध आचार्यों में विनीतप्रभ थे जिनसे ह्वेनसांग ने ज्ञान प्राप्त किया था।

पुरूषपुर–

पुरूषपुर (पेशावर) कुषाणवंश के शासक कनिष्क की राजधानी थी। यहां पर कनिष्क ने अनेक मठों का निर्माण करवाया था। ह्वेनसांग ने इन मठों की जीर्ण–शीर्ण अवस्था का उल्लेख किया है।[1] ह्वेनसांग के अनुसार नारायणदेव और पार्श्व यहां के सुप्रसिद्ध स्नातक थे। यह नालन्दा के पूर्व संभवतः सर्वश्रेष्ठ बौद्ध शिक्षा केन्द्र था।

उद्यान–

बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रमुख विकसित केन्द्र के रूप में उद्यान प्रसिद्ध था। इस विहार में 18000 भिक्षु भिक्षुणियां निवास करते थे वे इंद्रजालिक विषयों में पारंगत थे।[2]

मगध–

ह्वेनसांग ने मगध का उल्लेख तीलडक नाम से किया है,[3] तथा यहां पर

---

1 वाटर्स–पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 202

2 वाटर्स–पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 225–26

3 बील–बुद्धिस्ट रिकार्डस आफ दि वेस्टर्न वर्ड, लंदन भाग 1, पृ0 17

अनेक बौद्ध मठों का उल्लेख किया है।[1] इत्सिंग ने भी तीलडक मठ का उल्लेख किया है। इत्सिंग के समय ज्ञानचन्द्र नाम एक बौद्ध आचार्य नीतिशास्त्र का ज्ञाता माना जाता था।

कपिस–

कपिस में छः हजार से अधिक बौद्ध भिक्षु अध्यापन कार्य करते थे। यहां एक सौ से अधिक मठ निर्मित थे। यह महायान शाखा का प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। कनिष्क ने यहां पर एक मठ का निर्माण कराया था।

बोलर–

ह्वेनसांग ने यहां सैकड़ों मठ देखे थे, जहां बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। ये बौद्ध भिक्षु नियमों का कठोरता से पालन करते थे किन्तु इनकी शिक्षा व्यवस्थित प्रकार से नहीं हुई थी।[2]

वामेन–

ह्वेनसांग के अनुसार यहां पर दस बौद्ध मठ थे।[3] इन मठों में हजारों की संख्या में लोकोत्तरवादी शाखा के बौद्ध भिक्षु रहते थे। शनिक इस मठ का प्रमुख विद्वान था जो अनेक शास्त्रों में पारंगत था। इसने आनंद की प्रेरणा से

---

1 इत्सिंग–बुद्धिस्ट प्रेक्टिसेस इन इण्डिया पृष्ठ 184

2 वाटर्स–पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 292

3 वाटर्स–पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 116

भिक्षु जीवन स्वीकार किया था। यह राजगृह नामक व्यापारी का पुत्र था।

जालन्धर-

जालन्धर में हीनयान तथा महायान शाखा के लगभग 2000 भिक्षु रहते थे। ह्वेनसांग ने यहां चार मास तक बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था[1], ह्वेनसांग ने यहां के लगभग पचास मठों का उल्लेख किया है[2] जहां बौद्ध भिक्षु अध्ययन अध्यापन के कार्य में व्यस्त रहते थे।

कपिलवस्तु-

ललित विस्तर से विदित होता है कि कपिलवस्तु विद्या और शिल्प के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था जहां गौतम बुद्ध को विभिन्न शिल्प और विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ था। यहां का निग्रोधाराम विहार तथा पूर्वाराम विहार विशेषकर ख्याति प्राप्त था।

वैशाली-

जातकों और बौद्धग्रन्थों के अनुसार वैशाली नगर बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। महात्मा बुद्ध ने यहां भिक्षुओं को ज्ञान का उपदेश दिया था। यहाँ का आम्रवन विहार सुप्रसिद्ध था।

---

1 बील-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 2, पृष्ठ 102-03

2 वाटर्स-पूर्वोक्त ग्रंथ, भाग 1, पृष्ठ 296

ह्वेनसांग, इत्सिंग और कल्हण के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भारत में बौद्ध मठों का जाल फैला हुआ था, जो शिक्षा केन्द्र के रूप में ख्यातिप्राप्त थे। इन मठों में बौद्धग्रंथों के साथ-साथ अन्य विषयों का भी अध्यापन होता था। वाद-विवाद में भारत के ही नहीं, दूसरे देशों के विद्वान भी भाग लेते थे। जो विद्यार्थी दर्शनशास्त्र में किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन करता था, उसे हाथी पर चढ़ाकर विशेष रूप से सम्मानित किया जाता था। कपिलवस्तु का निग्रोधाराम विहार, पूर्वाराम विहार, वैशाली का आम्रवन विहार, और राजगृह का वेणुवन विहार बहुत अधिक प्रसिद्ध था। इन विहारों में अनेकानेक दार्शनिक प्रश्नों पर विद्वानों द्वारा चर्चाएं हुआ करती थीं, जिनमें बौद्ध भिक्षुओं के अतिरिक्त बौद्ध अनुयायी तथा साधारण जन शामिल हुआ करते थे। धीरे धीरे बौद्ध मठ और विहार ब्राह्मणों के गुरूकुल के आधार पर विकसित होने लगे, जो कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के प्रधान केन्द्र बन गए, विहारों के अतिरिक्त उनके संघारामों का विकास हुआ जहाँ आध्यात्मिक चिन्तन और मनन हुआ करता था। कालान्तर में तंत्रशास्त्र का प्रभाव बढ़ने से मठों में नैतिक आचरण का पतन प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ से ही मठों में अनुशासन पर बहुत ध्यान दिया जाता था, वस्तुतः यही इनके अस्तित्व का मूलाधार था। नियमों में लचीलापन आते ही बौद्ध धर्म राजाओं में विभाजित होना प्रारम्भ हो गया, अलग अलग मत स्थापित होने लगे, मठों में व्याप्त होते जा रहे कुप्रशासन का दुष्प्रभाव स्त्री

शिक्षा पर विशेषकर पड़ा। मठों में स्त्री शिक्षा कम होती गयी तथा मठ पतन के मार्ग पर अग्रसर हो गये तथा रही सही कसर मुस्लिम आक्रांताओं ने अपने बारम्बार धार्मिक विद्वेषपूर्ण आक्रमणों से पूरी कर दी, जिससे सल्तनत काल तक बौद्ध मठ लगभग ध्वंस कर दिये गये।

****

सप्तम् अध्याय

निष्कर्ष एवं सुझाव

शोध का संक्षिप्त विवरण

बौद्ध दर्शन का प्रभाव तत्कालीन समाज पर विशेषकर परिलक्षित होता है तथा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन ने पर्याप्त प्रभाव डाला था तथा तत्कालीन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। इस कारण इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा आदर्श मानी जा सकती है। आज वर्तमान शिक्षा में जिन सुधारों एवं परिवर्तन की चर्चाएं हो रही हैं, वह परिवर्तन तथा सुधार लाने में बौद्ध शिक्षा मार्ग दर्शन कर सकती है। बौद्ध शिक्षा में वे समस्त विशेषताएं विद्यमान थीं, जिनकी आज आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इन्हीं विशेषताओं को उद्घाटित करने के उद्देश्य से ही अनुसंधानकर्ता यह शोधग्रन्थ प्रस्तुत कर रहा है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में सात अध्याय हैं जो क्रमशः समस्या और उसकी पृष्ठभूमि, वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व, शोध समस्या का औचित्य एवं कथन, समस्या का परिभाषीकरण, शोध प्रबन्ध की सीमाएं, वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य, शोध विधि, सम्बद्ध साहित्य का अर्थ, सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता, समस्या से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों का विवरण, सम्बद्ध साहित्य की विवेचना एवं वर्तमान शोध से तुलना, ऐतिहासिक साधनों का मूल्यांकन, बौद्ध दर्शन की तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा, बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, छात्रों तथा अध्यापकों की

स्थिति, प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा, बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार एवं प्रभाव, स्त्री शिक्षा एवं सह शिक्षा का विकास एवं समाज पर प्रभाव, बौद्ध दर्शन में शिक्षा केन्द्र यथा तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला एवं अन्य शिक्षा केन्द्रों से सम्बन्धित है तथा सप्तम अध्याय में शोध का संक्षिप्त विवरण देते हुए निष्कर्ष निकाला गया है तथा निष्कर्षो के आधार पर सुझाव तथा भावी अध्ययन के लिए सुझाव देने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, तथा बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय तथा तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा के माध्यम से किया गया है, बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि तथा उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। छात्र तथा अध्यापकों की स्थिति की संकल्पना की गयी है। प्रौढ़ शिक्षा, सतत शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं सह शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है। बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार तथा प्रभाव का विवेचन किया गया है, बौद्ध कालीन शिक्षा केन्द्रों का वर्णन कर तत्कालीन शैक्षिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है तथा सम्बद्ध साहित्य के वर्णन द्वारा शोध ग्रन्थ में बौद्ध शिक्षा की स्थिति प्रकट करने का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का उल्लेखनीय वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधग्रन्थ में बौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति, विस्तार एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य वस्तुतः व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना था, परन्तु बौद्ध शिक्षा में शारीरिक विकास की उपेक्षा नहीं की गयी थी, उद्देश्यानुरूप ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी। आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ लौकिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। धर्म तथा दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में बौद्ध शिक्षा दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों का भी अध्ययन कराया जाता था। अन्य दर्शनों की गूढ़ एवं सत्य तथ्य बौद्ध दर्शन मे स्वीकार किए जाते थे। भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए नियम तथा आचार संहिता थे, जिनका पालन अनिवार्य था। जहां एक ओर प्रतिभाशाली तथा बुद्धिमान छात्रों के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था तथा मन्द बुद्धि छात्रों के लिए पृथक शिक्षण व्यवस्था थी तथा पृथक-पृथक विधियों का प्रयोग किया जाता था। छात्र-आचार्य सम्बन्ध व्यवहारिक तथा मधुर थे। छात्र अपना कर्तव्यपालन करते थे वहीं आचार्य भी अपने उत्तरदायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते थे। वैदिक शिक्षा की भांति बौद्ध शिक्षा में भी शास्त्रार्थ तथा अनुसंधान को महत्व दिया जाता था। कतिपय छात्र ज्ञान प्राप्ति हेतु अपना पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर देते थे।

स्त्रियों के लिए पृथक विद्यालयों का उल्लेख कहीं भी नहीं प्राप्त होता है, अतएव कहा जा सकता है कि सह-शिक्षा की व्यवस्था थी। स्त्रियों को भी पुरूषों की ही भांति समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा प्रदान करने में वर्ण व्यवस्था का कोई महत्व नहीं था, योग्य छात्र किसी भी वर्ग से सम्बद्ध थे, उन्हे निष्पक्षता से शिक्षा प्रदान की जाती थी।

छठी शताब्दी ई0पू0 में धार्मिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का उदय हुआ तत्कालीन समाज रूढ़िवादिता एवं वर्णभेद की संकीर्णता से ग्रस्त था, तथा ब्राह्मण वर्ग का समाज में प्राधान्य था, ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही श्रेष्ठता की पहचान माना जाता था, कर्म का महत्व कम होता जा रहा था। बौद्ध धर्म का जन्म चूंकि ब्राह्मण धर्म के प्रतिरोध के कारण हुआ था अतः बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण शिक्षा के समानान्तर विहारों तथा मठों में शिक्षा का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में इन विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप ले लिया जिसके परिणामस्वरूप तक्षशिला, नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला तथा अनेक शिक्षा केन्द्रों एवं विश्वविद्यालयों का उदय हुआ। इन शिक्षा केन्द्रों तथा विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के क्षेत्र में मानदण्ड स्थापित किए, जिनका महत्व सम्पूर्ण विश्व में आज भी दिखाई देता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन अभागे बालकों को कोई दूसरा अवसर नहीं देती जो इसके संकीर्ण प्रवेश द्वार मे घुस नहीं पाते या जो आर्थिक या सामाजिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर

इससे बाहर निकल जाते हैं। यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहित स्वार्थों की सहायता करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है, यथास्थिति को प्रोत्साहित करती है और शैक्षिक समानता के अवसरों का गला घोटती है। इसके दुष्चक्र में फँसकर सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक प्रतिबद्धता को भी स्वतंत्रता के लगभग 60 वर्ष पूर्ण होने पर भी हम पूर्ण नहीं कर सके हैं। देश में आज भी लगभग 25 प्रतिशत लोग निरक्षर है। इस कारण बौद्ध शिक्षा की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रासंगिकता है वस्तुतः वर्तमान शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने की महती आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा में बौद्ध शिक्षा का समावेश कर हम वर्तमान समाज को पुनः एक बार सुशिक्षित, सुपोषित एवं सुरक्षित कर सकते हैं। बौद्ध शिक्षा जहाँ एक ओर लाखों करोड़ों लोगों में शिक्षा के माध्यम से प्राण फूंकने में समर्थ है, तो दूसरी ओर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने में मार्ग दर्शन कर सकती है।

सुझाव

(अ) निष्कर्षों के आधार पर सुझाव –

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन अवश्यम्भावी है। वर्तमान शिक्षा को धर्म, संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, नैतिक मूल्यों, जीवन मूल्यों, आदर्शों से युक्त करना होगा और इसकी निरन्तरता को स्थापित करना होगा। इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा दर्शन की उपयोगिता एवं महत्व असंदिग्ध है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली कितनी प्राचीन है, फिर भी आधुनिक जीवन में वह अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है, अतएव, आधुनिक भारत की समझदारी और उसके विकास के मार्ग के प्रशस्तीकरण की आवश्यकता यह माँग करती है कि प्राचीन बौद्ध शिक्षा दर्शन का सर्वांगीण तथा व्यापक अध्ययन किया जाए। स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक आदर्श शिक्षा प्रणाली में होने चाहिए, बौद्ध शिक्षा प्रणाली को अपनाकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समृद्ध बनाया जाता है, व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास द्वारा ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास किया जाता है। व्यक्ति के भावी जीवन की दिशा तथा मानव समाज की संरचना मूलतः शिक्षा पर आधारित है। वर्तमान समय में विश्व के बहुआयामी विकास की गति इतनी तीव्र है तथा सीमा इतनी अबाध है कि इसके साथ चलना तथा सीमा के समीप पहुंचना कभी-कभी दुरूह कार्य सा प्रतीत होता है। समय-समय पर शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन तथा समायोजन

ही ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा इस दिशा में कुछ सहायता मिल सकती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के स्वरूप निर्धारण में बौद्ध शिक्षा दर्शन को अपनाया जा सकता है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक एवं मानसिक थी, बौद्ध शिक्षा में अधिकतर समय तो व्यवहारकुशलता उभारने और उसके साथ आदर्शवादिता शालीनता आदि का अभ्यास कराने का उपक्रम चलता था। सर्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं कारगर बनाने के लिए हो, हमें उसी विद्या, उसी शिक्षा व्यवस्था से प्रेरणा लेनी चाहिए। समय के साथ - साथ परिस्थितियां भी बदल गयी है, इसीलिए पूर्णतः बौद्ध शिक्षा पद्धति को अंगीकृत करना संभव नहीं है, पूर्णतः उसकी प्रतिमूर्ति स्थापित करना संभव नहीं है, परन्तु इतना तो किया ही जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा पद्धति का स्वरूप एवं अनुशासन गम्भीरतापूर्वक समझा जाए और उसके सार को वर्तमान शिक्षा क्रम में समाविष्ट कर लिया जाये। वह पद्धति ज्यों की त्यों लागू नहीं हो सकती, पर उस पद्धति के वे सिद्धान्त तो शाश्वत है। शिक्षा के साथ प्रतिभा निखार तथा सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन का क्रम तो जोड़ा जा सकता है। आज के अध्यापक को अपनी गरिमा एवं उत्तरदायित्व अधिक गम्भीरता से समझनी होगी। शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता जोड़ने के लिए प्राणपण से प्रयास करना होगा अन्यथा शिक्षा की उपेक्षा और शिक्षकों की

अवज्ञा का जो माहौल चल पड़ा है, वह बढ़ता ही जायेगा। अरूचिपूर्वक किसी प्रकार पाठ्यक्रम पूरा करा देने पर तो शिक्षक अपनी महत्ता और उपयोगिता में से किसी एक को भी बनाए न रख सकेगें, इसलिए विद्यार्थियों की उन्नति और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए शिक्षक संवर्ग को यह नया क्रम अपनाना होगा जो पाठ्यक्रम पूरा कराने के साथ ही साथ छात्रों का व्यक्तित्व उभारने, प्रतिभा निखारने और उन्हें आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनाने में पर्याप्त सफलता मिल सकती है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा का पाठ्क्रम निर्धारित था, जहां एक ओर पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे गये थे, जिनसे आध्यात्मिकता का विकास होता था वहीं दूसरी ओर व्यवसायपरक शिक्षा भी दी जाती थी, ताकि विद्यार्थी अपने भविष्य के प्रति चिन्तित न रहें। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा में उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम का सम्बन्ध था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी इस विशेषता से युक्त करना होगा, उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम में सम्बन्ध स्थापित करना होगा, पाठ्यक्रम को इस प्रकार से व्यवस्थित करना होगा जिससे समाज के विकास की गति एवं दिशा निश्चित हो सके। समाज में व्याप्त परंपरागत कुरीतियों, नैतिक मूल्यों के पतन आदि पर नियंत्रण हेतु प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा का ऐसा पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों की रचना करनी होगी जिनके माध्यम से इन पर नियंत्रण किया जा सके। बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम 'श्रेष्ठता' पर आधारित था, अतएव वर्तमान

शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण में बौद्ध पाठ्यक्रम मार्गदर्शन कर सकता है। पाठ्यक्रम को बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम की भांति रोजगारपरक बनाया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी भविष्य में अपने पैरों पर खड़ा होकर आत्मनिर्भर बन सके। नयी पीढ़ी में सद्गुणों का विकास करने, नैतिक मूल्यों की स्थापना तथा प्राचीन समन्वयकारी संस्कृति के ज्ञान की प्राप्ति हेतु बच्चों में अच्छे संस्कार बनने आवश्यक हैं, इस हेतु स्त्रियों में मातृत्व के गुणों का विकास तथा उन्हें गृहकार्य में दक्ष किया जाना अपेक्षित है। जिससे वे बच्चों में जन्म से ही अच्छे संस्कार डाल सके। अतः स्त्री शिक्षा के विकास के साथ-साथ स्त्रियों के लिए इस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्मित किया जाना चाहिए, जिससे वे इन गुणों से सम्पन्न हो सकें।

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक विद्यार्थी की क्षमतानुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए। विकास क्रम के विभिन्न सोपानें पर आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम समायोजित होना चाहिए। प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के माध्यम से देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक प्रगति की जा सकती है। निरक्षरता उत्पादन को घटाती है तथा औपचारिक शिक्षा बेकारों की फौज बढ़ाती है, इस दुष्चक्र से निकलने का एक मात्र साधन प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा है। प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के द्वारा ही जनता को नागरिकता के ज्ञान प्रजातंत्र के महत्व को बताकर वर्तमान राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त किया

जा सकता है। देश के बहुमुखी विकास के लिए सतत शिक्षा एक आधारभूत आवश्यकता है। यदि देश सतत शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधा एवं साधन विकसित नहीं कर पाएगा तो उसे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि नवीन ज्ञान एवं उच्च तकनीक के क्षेत्र में वह कुछ प्राप्त कर सकेगा। हजारो वर्ष पूर्व बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अपनायी गयी सतत् शिक्षा का अध्ययन करके हम वर्तमान सतत् शिक्षा के सम्प्रत्यय को संरचित एवं सुगठित कर सकते हैं। सर्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं कारगर बनाने के लिए हों। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण पक्ष था उसका धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से सुसम्बद्ध होना। आधुनिक शिक्षा प्रणाली धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से बहुत दूर हो चुकी है। मानव जाति का उद्धार आत्मज्ञान से ही संभव है। आत्म ज्ञान अध्यात्मज्ञान के बिना संभव नहीं है। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दर्शन तथा धर्म को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना होगा। धर्म एवं दर्शन से दूर होने के कारण ही आज मानव अपने नैतिक मूल्यों को खो चुका है। मानव का हृदय मात्र आत्मज्ञान द्वारा ही परिवर्तित हो सकता है। मानव जीवन के पहलू हैं-एक भौतिक तथा दूसरा आध्यात्मिक। आज मनुष्य अपना अधिकांश समय भौतिक संसार को ही देता है। दूसरे पक्ष की ओर बहुत ही कम सोचता है जबकि दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं, जिस प्रकार से रेलगाड़ी तभी सही दिशा में चलती है जब दोनों

पटरियां समान्तर होती हैं ठीक उसी प्रकार से मनुष्य जीवन रूपी गाड़ी तभी सही-सही चलेगी जब उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक रूपी दोनों पटरियां समान होगी। अध्यात्म ज्ञान के प्रचार-प्रसार से ही आज समाज में राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, मानव प्रेम एवं सद्भावना की शिक्षा प्रदान की जा सकती है। आज का मानव अपने लक्ष्य से दिशाहीन हो चुका है। अतः आधुनिक शिक्षा में बौद्ध शिक्षा का समावेश ही वर्तमान दिशाहीन मानव का मार्गदर्शन कर सकता है।

(ब) भावी अध्ययन के लिए सुझावः

प्रस्तुत शोधग्रन्थ से प्राप्त निष्कर्षों से भावी अध्ययन के लिए सुझाव निम्नवत् है-

1. बौद्ध दर्शन की शैक्षिक विशेषताएं तथा प्रभाव।
2. बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध दर्शन का प्रभाव।
3. बौद्ध शिक्षा एवं वैदिक शिक्षा में समानता एवं अन्तर।
4. बौद्ध शिक्षा पर वैदिक शिक्षा का प्रभाव।
5. बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार बौद्ध शिक्षा की महत्ता।
6. बौद्ध शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा की तुलना।
7. बौद्ध शिक्षा का विकास-अभिशाप या वरदान।
8. बौद्ध शिक्षा का जनसामान्य पर प्रभाव।

9. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बौद्ध शिक्षा का औचित्य।

10. बौद्ध शिक्षा-दर्शन में स्त्री शिक्षा।

11. बौद्ध शिक्षा दर्शन में सतत शिक्षा का प्रसार एवं प्रभाव।

12. बौद्ध शिक्षा में छात्र-अध्यापक सम्बन्ध की संकल्पना।

13. बौद्ध शिक्षा-दर्शन में बौद्ध ग्रन्थों की महत्ता।

14. बौद्ध शिक्षा की इस्लामी शिक्षा से तुलना।

15. बौद्ध शिक्षा दर्शन का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान।

16. बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ ।

17. बौद्ध शिक्षा दर्शन का विश्व में प्रसार।

****

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी ग्रन्थ

अग्रवाल, एस0के0 : शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त

अल्टेकर, ए0एम0 : प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन

अग्रवाल, वासुदेव शरण : कादम्बरी-एक सांस्कृतिक अध्ययन

उपाध्याय, राम जी : भारत की सांस्कृतिक साधना

उपाध्याय, आचार्य बलदेव : भारतीय दर्शन

कबीर, हुमायूं : भारतीय शिक्षा दर्शन

चतुर्वेदी, सीताराम : शिक्षा दर्शन

चतुरसेन, आचार्य : बुद्ध और बौद्ध धर्म

चन्द्र, प्रताप : आदि बौद्ध दर्शन-अनात्मवादी परिप्रेक्ष्य

चोपड़ा, पुरी एवं दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास

चौबे, सरयू प्रसाद : भारतीय शिक्षा

जौहरी, बी0पी0 : भारतीय शिक्षा का सिद्धान्त

झा, डी0एन0 : प्राचीन भारत, एक रूपरेखा

थापर, रोमिला : भारत का इतिहास

देवी, गीता : उत्तर भारत में शिक्षा व्यवस्था

नरेन्द्र देव, आचार्य : बौद्ध धर्म-दर्शन

नीरज श्रीवास्तव : मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति ।

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र : बौद्धधम्म के विकास का इतिहास

पाठक, पी0डी0 एवं त्यागी गुरूसरनदास : भारत में शिक्षा दर्शन और शैक्षिक समस्यायें।

प्रो0 के0टी0एस0 सराओ : प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म – उद्भव, स्वरूप और पतन ।

बाशम, ए0एल0 : अद्भुत भारत

मिश्र, आत्मानंद : भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक

मिश्र, डॉ0 जयशंकर : भारत का सामाजिक इतिहास

मिश्र, उमेश : भारतीय दर्शन

रावत, प्यारे लाल : भारतीय शिक्षा का इतिहास

रास : शिक्षा सिद्धान्त के मूल आधार

राय, पारसनाथ : अनुसंधान परिचय

राधाकृष्णन, सर्वपल्ली:भारतीय दर्शन प्रथम खण्ड (वैदिक युग से बौद्धकाल तक)

आर0सी0 मजूमदार : श्रेण्य युग

श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र : प्राचीन भारत की संस्कृति

एस0एन0 दास गुप्ता : भारतीय दर्शन का इतिहास

सहगल, मनमोहन : शिक्षा दर्शन

सिंह, राजकिशोर : भारतीय संस्कृति

सिंह एवं शास्त्री : भारतीय शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास

हिरियन्ना, एम0 : भारतीय दर्शन की रूपरेखा

हुसैन, जाकिर : शिक्षा

अंग्रेजी ग्रन्थ

अल्टेकर, ए0एस0 : एजूकेशन इन एसेण्ट इण्डिया

अंगुत्तर निकाय (जिल्द 1 से 4 तक): प्रधान सम्पादक-भिक्खु जगदीश कश्यप

अंगुत्तर निकाय : रोमन लिपि में सम्पादित(पालिटैक्टस सोसाइटी द्वारा प्रकाशित)

अंगुत्तर निकाय : : प्रधान संपादक-भिक्खु जगदीश कश्यप

बुच, एम0बी0 : ए सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन

: सेकण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन

: थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन

: दि लाइफ आफ बुद्धा एज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री

बोधिचर्यावतार : बिविलयोये का इण्डिया में प्रकाशित

बुद्धचरित : अश्वघोष

दास, एस0के0 : एजुकेशन सिस्टम आफ दि एसेन्ट हिन्दूज

दासगुप्ता, एस0एन0 : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी

दीघ निकाय : प्रधान सम्पादक-भिक्खु जगदीश कश्यप

धम्मपद : बुद्धघोष, एफ0 मैक्समूलर का अंग्रेजी अनुवाद

दीघ निकाय : सम्पादक रीज डेविड्स एवं ईकार पेण्टर

धम्म संगणि : संपादक बापट एवं दाडेकर

गौतम धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित

हर्षचरित : बाण, (अंग्रेजी अनुवाद-फाउस बेल्ल)

इलियट सर0सी0 : हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म

जातक कथा : बुद्धघोष, बटुकनाथ शर्मा द्वारा नागरी में प्रकाशित

जातक : संपादक फाउस बेल्ली (अंग्रेजी अनुवाद)

मदन्त आनन्द कौसल्यायन (हिन्दी अनुवाद)

कीथ, ए0बी0 : बुद्धिस्ट फिलासफी इन इण्डिया एण्ड सीलोन

खुद्धक पाठ : चाइल्डर्स का अंग्रेजी अनुवाद

कादम्बरी : बाण, एम0 आर0 काले का अंग्रेजी अनुवाद

कथा सरितसागर : सोमदेव , (अंग्रेजी अुनवाद, सी0एच0टानी)

(हिन्दी अनुवाद–के0एन0 शर्मा)

ला, बी0सी0 : कांसेप्टस आफ बुद्धिज्म

ललितविस्तर : बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली, दरभंगा

मेहता, आर0एन0 : प्री बुद्धिस्ट इण्डिया

मूर्ति, टी0आर0वी0: दि सेन्ट्रल फिलासफी आफ बुद्धिज्म

मज्झिम निकाय : जिल्द 1 : संपादक पी0वी0 बापट

जिल्द 2 : संपादक राहुल सांकृत्यायन

जिल्द 3 : संपादक राहुल सांकृत्यायन

मिलिन्दपन्हो : संपादक वी0 टैकक्षर (रोमन संस्करण)

: संपादक आर0टी0 वाडेकर (हिन्दी संस्करण)

: दि क्वेश्चन्स आफ किंग मिलिन्द–अनुवाद टी0डब्लू0 रीज डेविड्स (अंग्रेजी संस्करण)

मालविकाग्निमित्र : कालिदास, एस0के0 राव

मालती माधव : भवभूति, (अंग्रेजी अनुवाद : आर0पी0 भण्डारकर)

नागानन्द : हर्ष, मद्रास, 1932

पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र : स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बुद्धिज्म

प्रियदर्शिका : हर्ष, मद्रास, 1948

रीज डेविड्स, श्रीमती : बुद्धिज्म

रत्नावली : हर्ष, ए0आर0 शास्त्री का अंग्रेजी अनुवाद

राजतरंगिणी : कल्हण, एम0 ए0 स्टाइन का अंग्रेजी अनुवाद

सर्वपल्ली राधाकृष्णन : दि धम्म पद

शर्मा, चन्द्रधर : ए क्रिटिकल सर्वे आफ इंडियन फिलासफी

थापर, रोमिला : एशेण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री

वारेन, एच0सी0 : बुद्धिज्म इन ट्रान्सलेशन

विनय पिटक : प्रधान सम्पादक-भिक्खु जगदीश कश्यप

विसुद्धिमग्गो : बुद्धघोष, रोमन संस्करण, संपादक श्रीमती रीज डेविड्स

वृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्र,

वृहत्कथाकोष : क्षेमेन्द्र

विदेशी विवरण ग्रन्थ

अल्बरूनी : अल्बरूनीज इंडिया भाग 1 एवं 2, ई0सी0 सचाऊ का अंग्रेजी संस्करण।

इत्सिंग : ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन एज प्रैक्टाइज्ड इन इण्डिया एण्ड मलय आर्कियोलाजी बुद्धिस्ट प्रेक्टिसेस इन इण्डिया–जे0 तकाकुसु का अंग्रेजी अनुवाद

जरनल्स

एपिग्राफिका इण्डिया

आर्किलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्टस

इण्डियन ऐण्टिक्वेरी

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली

जरनल एशियाटिक में मायर्स आफ दि आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

जरनल आफ दि ग्रन्थमाला इन रिसर्च इन्स्टीट्यूट

जरनल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

जरनल आफ दि पालिटेक्ट्स सोसायटी

जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड

कल्याण, शिक्षा वार्षिकांक

प्रेसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस

****